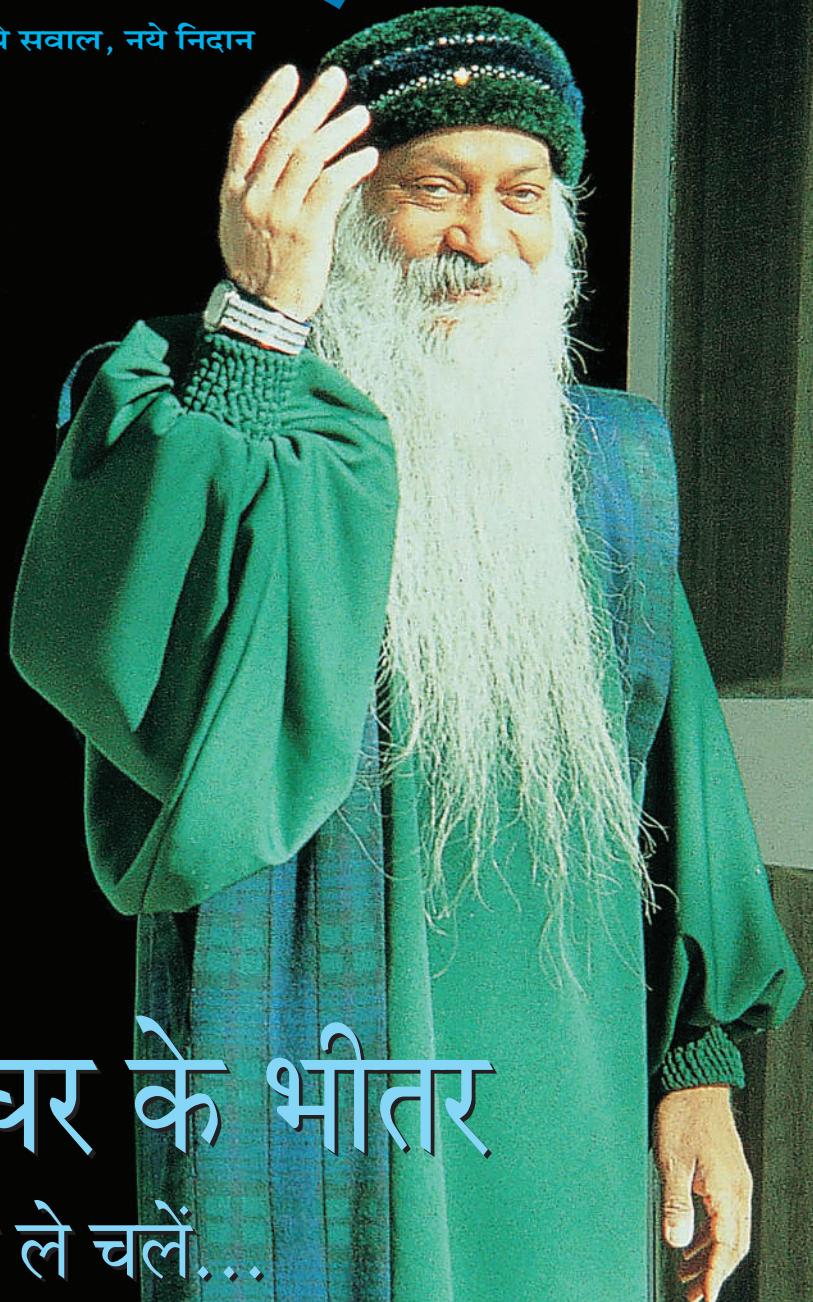


मई 2020 वर्ष 11 अंक 8

यैस ओशो

नये सवाल, नये निदान



आइये, घर के भीतर एक ताज़ी धूप ले चलें...

ओशो की अंतर्दृष्टि

व उनके द्वारा सुझाये कुछ प्रयोगः

लॉकडाउन की बेचैनी, उदासी व अकेलेपन को
बदलें प्रफुल्लता व करुणा में

जिंदगी बहुत सी चुनौतियां लाती है।

जो चुनौती रवीकार नहीं करते, वे उदास हो जाते हैं।
जो चुनौती रवीकार नहीं करते,
वे हारे-थके, सर्वहारा हो जाते हैं।
चुनौती रवीकार करो,
हर चुनौती तुम्हारे भीतर सोए को जगाती है।
हर चुनौती तुम्हारे भीतर जो अप्रगट है, उसको प्रकट करती है।

यह संसार तूफानपूर्ण है।

अगर परमात्मा ने यह संसार दिया है तो इसके पीछे अर्थ है।
अर्थ एक ही है कि जो इसकी चुनौती रवीकार करेगा,
नींद टूट जाएगी।
जो इसकी चुनौती रवीकार करेगा, वह अच्छंड हो जाएगा।
जो इसकी चुनौती रवीकार करेगा, फैलाद हो जाएगा।
उसके भीतर आत्मा का जन्म होगा।
आत्मा ऐसे ही जन्मती है।
यह आत्मा को जन्माने का महत प्रयोग है संसार।

और अगर तुम तूफानों में जीने के आदी हो जाओ,
और अगर तुम जिंदगी और मौत को खेल समझने लगो,
ज्यादा देर न लगेगी,
उसके चरण तुम्हारे निकट आने लगेंगे,
उसकी आहट तुम्हें सुनाई पड़ने लगेगी।

अच्छी मैं तो नाम के दंग छकी, प्रवचन 4

मेरे प्रिय,

प्रेम।

सुरक्षा है ही नहीं कहीं-सिवाय मृत्यु के।

जीवन असुरक्षा का ही दूसरा नाम है।

और यही उसकी पुलक है—यही उसका सौंदर्य है।

इस सत्य की पहचान से सुरक्षा की आकांक्षा स्वतः ही विलीन हो जाती है।

असुरक्षा की रवीकृति ही असुरक्षा से मुक्ति है।

मन में दुष्प्रिया रहेगी ही।

क्योंकि, वह मन का स्वभाव है।

उसे मिटाने की फिकर छोड़।

क्योंकि, वह भी दुष्प्रिया ही है।

दुष्प्रिया को रहने दे—अपनी जगह।

और तू ध्यान में चल।

तू मन नहीं है।

इसलिए, मन से क्या बाधा है?

अंधेरे को रहने दे—अपनी जगह।

तू तो दिया जला।



Thank You, Beloved Osho
Swami Bodhi Vimal, Gurgaon

यैस ओशो

मई 2020



प्रकाशक व संपादक : संजय भारती

प्रकाशन का स्थान : सेलिब्रेट्स, बी 10, सनशाइन टॉवर्स, पॉपुलर हाइट्स रोड,
कोरेगांव पार्क, पुणे 411 001

फोन : 020-26150015 ईमेल : yesosh.info@gmail.com

कार्यकारी संपादक : संतोष भारती फीचर सहयोग : अनिल सरस्वती, आत्मो मनीष

सृजन सहयोग : बॉबी फोटोग्राफी : आत्मो मनीष, सुर्पणा वितरण व्यवस्था : देव साम्या

First Publication Copyright © 1953 OSHO International Foundation.
Copyright © All revisions 1953-2020 OSHO International Foundation. All rights reserved.

यैस ओशो ब्यूरो

मुंबई : 9819012780

जयपुर : 8619123992

7230043043

इंदौर : 9893773242

अहमदाबाद : 9426085393

अहमदाबाद : 9824051299

पटना : 7004818462

भीलवाड़ा : 9413057057

भीलवाड़ा : 9694935601

घरौदा : 9416335032

करनाल : 9315669592

गवालियर : 9926646118

रोहतक : 9416945839

गजकोट : 9427254276

काठमांडू : 00977-16910889

दामन : 00977-9852677502

भोपाल : 9300688065

उल्हासनगर : 9324688702

बनास : 7275880012

नागपुर : 9370131208

उज्जैन : 9826204097,

उज्जैन : 9755929448

स्झीकी : 09837378070

लुधियाना : 9988176442

चंडीगढ़ : 9417643701

अकोला : 9422164323

बोरेली : 9411658172

जालंधर : 9815657071

ऋषिकेश : 8755902084

ऋषिकेश : 9761716300

अजमेर : 9828520864

झूंगरपुर : 9414724751

अलीगढ़ : 9927028096

9897759999

तलवाड़ा : 9417175391

उदयपुर : 9352516130

हैदराबाद : 9392472766

इगतपुरी : 9226283081

रायपुर : 9425503949

फिरोजाबाद : 9319791673

कारंजा : 9404094398

बिलासपुर : 9827177272

छिंदवाडा : 9827449131

पोरबंदर : 9979657304

मानवत : 9422207953

अन्य चर्तम

5. संपादकीय

8. कहानी : टूटा छप्पर और तारों की झालार

10. रोज़मरा के प्रश्न व ओशो के समयातीत उत्तर

12. ध्यान विज्ञान

30. मिट्टी के दीये

31. सीप के मोती

32. कुछ पुस्तकें पढ़ने जैसी

40. हमारी व्यारी धरती

42. साक्षात्कार

48. स्वास्थ्य

52. सोचें जरा

57. देह-संगीत

60. लगन महरत झूठ सब



कुरुक्षेत्र : 9253447536

आगरा : 9837120625

नासिक : 9822655045

आमला : 9981284108

बांदिकुई : 9610088990

सोलन : 9736707298

सोलन : 8894925396

जबलपुर : 9009530956

गया : 9308212518

अलवर : 9214080532

नासिक : 9403162888

पटियाला : 9876255101

कोटा : 9414862621

गाजियाबाद : 8800139880

अमृतसर : 9417071600

अमरावती : 9970870757

जालौर : 9460016065

सतना : 9425376614

तिरुचारपल्ली : 9443424065

सहरसा : 8677992338

चापा : 9575518984

पाती : 9529788784

कुशीनगर : 9838383505

धामपुर : 9412854360

लखनऊ : 9919761119

लखनऊ : 7905477107

रक्साल : 9097163334

सारनी : 8871129998

बंगलूरु : 8088008808

दिल्ली : 8595390001

गढ़शक्कर : 781979243

आसनसाल : 9332193365

भिटडा : 9780076800

बोकारो : 9708594977

राची : 9234778347

पॉज़िटिव थिंकिंग नहीं, टोटल लिविंग...

न कोई विश्ववुद्ध हुआ और न कोई न्यूक्लियर विस्फोट, न जमीनें हिलीं और न समंदर बेकाबू हुए, बस एक छोटा-सा वायरस आया—इतना छोटा कि उसे किसी सामान्य सूक्ष्मदर्शी से देखा जा पाना भी संभव नहीं—और सरपट दौड़ता पूरा संसार ठहर गया। पहिये जाम हो गए और किवाड़ बंद कर लिए गए।

बहुत-सी कहानियां रही होंगी जो रुके हुए पहियों के साथ रुक गई होंगी या बंद किवाड़ों के बाहर भटकती रह गई होंगी। फिर बहुत-सी कहानियां इन्हीं किवाड़ों के पीछे शुरू भी हुई होंगी या शुरू होने की तैयारी में होंगी। ये कहानियां हमारी आदतें हो सकती हैं, हमारी जीवन शैली हो सकती है, हमारी आजीविका के साधन हो सकते हैं, हमारे संबंधों के ढांचे हो सकते हैं।

जीवन की चलती हुई कहानियां अनायास ही यदि थम जाएं, अचानक उनमें यदि बदलाव लाने पड़ें जो चाहकर नहीं बल्कि परिस्थिति की मजबूरी में लाने पड़े हों, और इस परिस्थिति की पृष्ठभूमि आशंका व अनिश्चितता से निर्मित हुई हो तो स्वाभाविक है कि हमारी मानसिक व भावनात्मक संरचना प्रभावित हो। ये प्रभाव सघन रूप से प्रतिकूल भी हो सकते हैं और रचनात्मक दिशा भी ले सकते हैं—निर्भर करता है कि हमने सचेत रूप से जीवन में अपने भावों को समझने व रूपांतरित करने के प्रयोग करने का निर्णय लिया है या नहीं।

जब भी कोई परिस्थिति हमारे या हमारे प्रियजनों के जीवन को लेकर आशंका पैदा करती है, या जीवन-यापन के संसाधनों अथवा हमारे संबंधों के प्रति अनिश्चितता लाती है, या संसार से अलग-थलग पड़ जाने का भय पकड़ता है तो हमारा शरीर प्राकृतिक रूप से एक तनाव पैदा करता है ताकि हमारा मनोशारीरिक संस्थान चुनौतियों से जूझने के लिए अतिरिक्त ऊर्जा पैदा कर सके। इस तनाव में जो बेचैनी होती है वह एक इंधन है जो हमारे मस्तिष्क के सोए हुए स्नायुओं को क्रियाशील कर सके—ठीक वही बेचैनी, जो किसी वैज्ञानिक को किसी नये अविष्कार के लिये झकझोरती है, या किसी सृजनकार को होती है सृजन को एक उच्चतर दिशा देने में। मनोवैज्ञानिक इस तनाव को यूस्ट्रेस कहते हैं—सकारात्मक तनाव। यूस्ट्रेस हर आयाम से विकास व रूपांतरण के लिए बहुत उपयोगी है।

इस यूस्ट्रेस का, सकारात्मक तनाव का, यदि कोई रचनात्मक उपयोग न किया जाये तो अक्सर वह नकारात्मक तनाव में बदल जाता है। इस नकारात्मक तनाव को मनोविज्ञान ने डिस्ट्रेस कहा है, जिसके साथ आते हैं निराशा और डिप्रेशन, अवसाद। जहां यूस्ट्रेस हमारी शक्ति बन सकता है, वहां डिस्ट्रेस हमारी शक्तियों को पंगु करने लगता है।

यूस्ट्रेस उपयोगी है, लेकिन अक्सर हम इसका उपयोग करने की बजाय उसे समस्या में बदल लेते हैं। इसका कारण ओशो बताते हैं कि हमने अपनी शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक ऊर्जाओं और आवेगों को शुभ व अशुभ में बांट रखा है—इसीलिए हम जिन ऊर्जाओं व आवेगों को अशुभ कहते हैं उनका उपयोग नहीं कर पाते। हमने तनाव व तनावजन्य उदासी और बेचैनी को अशुभ की श्रेणी में रखा है। अशुभ यानि समस्या। और समस्या से या तो हम लड़ने की कोशिश करते हैं या बचने की। लड़ने और बचने के अलावा हमारे पास तीसरी एक और युक्ति है—नजरअंदाज करने की। ओशो बताते हैं कि इन तीनों ही स्थितियों में हम इन ऊर्जाओं का सार्थक उपयोग करने से चूक जाते हैं। और अक्सर होता यह है कि हम न केवल इन ऊर्जाओं के सार्थक उपयोग से चूकते हैं, बल्कि उस बिंदु की ओर भी बढ़ जाते हैं जहां से ये ऊर्जाएं हमारी शक्तियों को सोखने लगती हैं।

प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रत्युत्तर में हमारा मनोशारीरिक संस्थान जो आवेग पैदा करता है उनके साथ हम सामान्यतया क्या करते हैं, और क्या कर सकते हैं, इस विषय में आइये सीधे ओशो के शब्दों में ही समझें।

ओशो कहते हैं, ‘किसी परिस्थिति में तुममें भय पैदा हुआ—तुम इस बात से भयभीत हो जाते हो कि तुम भयभीत हुए क्योंकि परिस्थिति के प्रत्युत्तर में जो ऊर्जा उठी, उसे तुमने एक लेबल दे दिया। जो ऊर्जा उठी थी वह तुम्हारी मनोशारीरिक अंतःप्रज्ञा ने पैदा की थी ताकि तुम उस पर सवार हो जाओ और परिस्थिति में से कुछ रचनात्मक निचोड़ लो। लेकिन तुमने उस ऊर्जा को एक लेबल देकर एक समस्या बना लिया। भय की ऊर्जा ठीक थी क्योंकि वह तरल थी जिसे तुम ऊर्ध्वगामी दिशा दे सकते थे, लेकिन जब तुम भयभीत होने से भयभीत हो गए तो तुमने उसे ठोस बना दिया—अब तुम उसके भीतर बंद हो जाओगे। ऐसे ही जब कभी उदासी आती है तुम इसलिए और उदास हो जाते हो कि उदासी आई, जब बेचैनी आती है तो तुम बेचैन हो जाते हो। ऐसे ये सभी आवेग ठोस हो जाते हैं। और जो कुछ भी ठोस होगा वह तुम्हारे कंधों पर और छाती पर एक बोझ होगा, जिसे उतार फेंकने के लिए तुम्हारे भीतर एक लड़ाई की दशा खड़ी होगी। इस लड़ाई में तुम क्या करोगे? या तो तुम उन आवेगों को अस्वीकार करोगे कि वे हैं ही नहीं, या मन को कहीं उलझाने की कोशिश करोगे कि वे दिखाई न दें, या फिर उनसे विपरीत आवेगों को अपने ऊपर आरोपित कर लोगे—भीतर भय है और बाहर तुम मुस्कराने

लगोगे, भीतर उदासी है और बाहर तुम प्रफुल्लता ले आओगे। इसके अतिरिक्त इन आवेगों से लड़ने का तुम्हारे पास कोई उपाय ही नहीं है क्योंकि तुम जानते ही नहीं कि वे हैं क्या, क्योंकि तुम्हारे हाथों में तो बस लेबल हैं जो इन आवेगों को अशुभ कहते हैं। तुम्हारी लड़ाई के उपाय इन आवेगों को बस भीतर गहरे में ढकेल देंगे, जहां वे और ठोस होते रहेंगे व फिर-फिर उभरते रहेंगे—विघ्नसात्मक होकर।

‘जब भी मनोशारीरिक अंतःप्रज्ञा कोई आवेग पैदा करे तो यदि तुम उसे स्वीकार कर सको, यदि तुम कह सको कि अच्छा भय आया है तो देखते हैं कि यह क्या संदेश लाया है, यदि तुम साक्षी होकर उसे उसकी पूरी समग्रता में देख सको—तो तुम पाओगे कि देखते-देखते ही वह आवेग विदा हो गया, और उसकी जगह एक विराट ऊर्जा पीछे छूट गई जिसमें सृजन की अपार क्षमता है।’

कोरोना वायरस का तेजी से फैलता संक्रमण, एक लंबे लॉकडाउन की स्थिति और उसके कारण उभरती व्यक्तिगत व सामाजिक परिस्थितियां जो आर्थिक व मानसिक तल को प्रभावित कर सकती हैं, और फिर दिन-रात ऐसे समाचार व विश्लेषण जो डराते हों—स्वाभाविक है कि भय भी आए, बेचैनी भी आए, उदासी भी आए, कुछ तनाव भी हो। फिर हो सकता है कि काफी लोग लॉकडाउन में अलग-थलग पड़ जाने की बजह से अकेलापन भी महसूस कर रहे हों। ये सभी आवेग यूस्ट्रेस के हिस्से हैं और इनमें अपनी एक ऊर्जा है जो सृजनात्मक हो सकती है—यदि हम उसे खोल पाएं। कैसे यूस्ट्रेस डिस्ट्रेस की दिशा में न जाकर हमारे लिए एक सृजनात्मक ऊर्जा बन जाए, इसके लिए ओशो ने विविध आवेगों के साक्षी होने की कई विधियां दी हैं, जिन्हें हम इस अंक में संकलित कर रहे हैं। उनका प्रयोग करके देखें।

लेकिन हो सकता है कि कुछ लोगों के लिए आवेगों का साक्षी रह पाना कठिन हो क्योंकि साक्षी होने के लिए चाहिए पूरी जागरूकता, और हम छोटे-मोटे निरीह कृत्यों में भी जागरूक होने की बजाय यंत्रवत होने में प्रशिक्षित हैं। इसीलिए ओशो ने ऐसी विधियां भी दी हैं जिनमें हम शारीरिक सक्रियता का उपयोग करते हुए आवेगों से मुक्त भी हो सकते हैं और उनका सृजनात्मक रूपांतरण भी कर सकते हैं। इनमें दो बहुत शक्तिशाली विधियां हैं—डाइनमिक व कुंडलिनी मेडिटेशन। डाइनमिक में हम संचित या पैदा हो रहे सभी आवेगों का तीव्रगति से रेचन करते हैं, उन्हें बाहर उत्तीर्णते हैं। कुंडलिनी में हम अपने शारीरिक व मानसिक तनावों को सौम्य क्रियाओं के सहयोग से रिलीज़ करते हैं। इन दोनों ही विधियों के विषय में आप ओशो डॉट कॉम से विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

ये दोनों ही विधियां व्यवस्थित हैं जिनमें शारीरिक क्रियाएं अलग-अलग चरणों में क्रमबद्ध हैं, उनकी अवधि तय है, क्रियाओं को सहयोग देने के लिए एक विशेष संगीत निर्धारित है, और इन्हें दिन के किस समय किया

जाए यह भी प्रस्तावित है। लेकिन ओशो कई त्वरित उपयोग की विधियां भी देते हैं जो कभी भी की जा सकती हैं—जब भी कोई आवेग उठता हुआ अनुभव हो। इनकी अवधि व्यक्ति अपने आवेगों की तीव्रता के अनुसार निर्धारित कर सकता है, यानि तब तक करता रह सकता है जब तक कि वह आवेगों की ऊर्जा को विधायक में रूपांतरित होता अनुभव कर करने लगे। इन विधियों में यदि संगीत का सहयोग चाहिए हो तो वह भी व्यक्ति स्वयं चुन सकता है।

जैसे कि—हममें भय उठा तो हम स्वयं को कमरे में बंद कर लें और दिल खोल कर उछलें-कूदें, भीतर से जो आवाजें निकलना चाहती हों उन्हें बाहर निकलने में सहयोग करें, चीखें निकलें तो चीख भी लें, और जब लगे शरीर की सामर्थ्य चुक गई है तो लेट जाएं और भीतर जो ऊर्जाएं बदल रही हैं उन्हें बस देखें। बेचैनी का अनुभव हो रहा है, तो हम एक तेज दौड़ पर निकल जाएं—यदि बाहर दौड़ने जाना संभव न हो तो एक ही जगह खड़े-खड़े तेजी से दौड़ें, तब तक जब तक कि पसीना न निकलने लगे, और फिर बस लेट जाएं व बेचैनी की ऊर्जा को बदलते हुए देखें। उदासी है या अवसाद महसूस हो रहा है तो हम नाचना शुरू कर दें, हो सकता है नृत्य की शुरुआत थोड़ी अनमनी हो, लेकिन प्रयोग यदि हम निष्ठापूर्वक कर रहे हैं तो जल्दी ही नृत्य में सघनता और प्रफुल्लता आती चली जाएंगी, हो सकता है आप नाचते-नाचते हंसने भी लगें, और नाचते-नाचते ही आप ऊर्जाओं का रूपांतरण अनुभव कर पाएंगे।

कोई कह सकता है क्या ये क्रियाएं आवेगों को भुलाने का उपाय नहीं हैं, जिसके विषय में पीछे ओशो स्वयं ही बता रहे थे? नहीं, ये आवेगों को भुलाने के उपाय नहीं, बल्कि उन्हें रूपांतरित करने के सचेतन प्रयोग हैं। आवेगों को भुलाने के उपाय में आप उनके होने को अस्वीकार करते हैं और ध्यान को कहीं और भटका लेते हैं। लेकिन जब आप आवेगों की ऊर्जा को बदलने के लिए सचेतन प्रयोग करते हैं तो पहले आप उन आवेगों को स्वीकार करते हैं—क्योंकि जो हो ही न, उसे आप रूपांतरण कैसे करेंगे?

हो सकता है आवेगों को भुलाने के लिए भी आप हंसें, नाचें, दौड़ें; और उनकी ऊर्जा को बदलने के सचेतन प्रयोग में भी वही सब करेंगे—तो तार्किक रूप से परिणाम तो एक ही होना चाहिए, लेकिन होता नहीं। कारण यह कि ऊर्जाएं बच्चों की तरह संवेदनशील होती हैं, और पहचानती हैं कि उन्हें किस नीयत से छुआ गया है। जैसे मान लीजिए एक बच्चा रो रहा है और आप उसके रोने से खीझ रहे हैं इसलिए उसे गोद में उठाकर चुप करवाने लगते हैं, आप कितना ही ‘अल्ले ले ले’ कर लीजिए लेकिन बच्चा चुप नहीं होगा; वहीं एक व्यक्ति बच्चे के रोने से चिंतित होता है कि पता नहीं बेचारा क्यों रो रहा है, वह भी बच्चे को गोद में उठाएगा और उसके ‘अल्ले ले ले’ कहने से पहले ही बच्चा मुस्कुराने लगेगा—एक रोने की

आवाज से बचना चाहता था, एक उस रोने को मुस्कुराहट में रूपांतरित करना चाहता था, और दोनों ने एक ही कृत्य किया लेकिन दो अलग-अलग परिणाम आए।

जिन आवेगों को नकारात्मक लेबल दे दिया गया है उन्हें भुलाने की युक्ति को एक बड़ा सुंदर नाम मिला हुआ है—पॉज़िटिव थिंकिंग, सकारात्मक सोच। आज बड़े-बड़े लाइफ कोच हैं, उपदेशक हैं, फेसिलिटेटर हैं जो यह बताते हैं कि नकारात्मक की ओर ध्यान न दें, बस सकारात्मक की ओर देखें व प्रसन्न रहें। मौजूदा परिस्थितियों में जब चारों ओर से इतने नकारात्मक आधार हो रहे हैं तो यह फिलॉसफी बड़ी राहत देती लगती है। लेकिन ओशो पॉज़िटिव थिंकिंग को एनेस्थीसिया कहते हैं—जैसे किसी अंग में असह्य पीड़ा हो तो वहां सुन्न करने वाली दवा का इंजेक्शन लगा दिया। अब जब तक कि इंजेक्शन का असर रहेगा, पीड़ा नहीं होगी, लेकिन पीड़ा का कारण ज्यों का त्यों बना रहेगा।

ओशो कहते हैं, ‘तुम गुलाब की झाड़ी के पास जाओ तो पॉज़िटिव थिंकिंग का पक्षधर कहेगा कि कांटों को देखो ही मत, केवल फूल को देखो, कांटों को अपनी आंखों में चुभने ही मत दो। वह दरअसल यह कह रहा है कि अपने को कांटों के प्रति अंधा कर लो। जब तुमने कांटों के प्रति अपने को अंधा कर लिया तो वे तुम्हारी आंखों को तो नहीं दिखेंगे लेकिन हाथों को जरूर चुभेंगे। फिर तुम झाड़ी के पास से हट जाओगे और बस गुलाब के फूलों की बातें करेगे। मैं पॉज़िटिव थिंकिंग की बात नहीं करता, टोटल लिविंग की, समग्रता से जीने की बात करता हूँ।’ जब तुम गुलाब की झाड़ी के पास जाओ तो तुम्हें कांटे भी दिखाई दें और फूल भी, तुम जानो कि ये कांटे फूलों की रक्षा के लिए हैं, तुम जानो कि जो ऊर्जा इन कांटों में बह रही है वही फूलों में सुरंग बनकर फैली है। फिर तुम कांटों को भी प्रेम से छुओगे और वे तुम्हें चुभेंगे नहीं। फिर तुम फूलों

के इतना करीब जा पाओगे कि उन्हें आलिंगन में ले सको, उन्हें चूम सको। इसीलिए मैं कहता हूँ
‘क्षा मत करो—जिसकी सलाह पॉज़िटिव थिंकिंग की फिलॉसफी देती है। मैं कहता हूँ
अंतर्निहित है। उनका स्वीकार उनके रूपांतरण की ओर पहला कदम है। वरना तो उन्हें उपेक्षित करके तुम बस उन्हें भीतर सुला दोगे, और वे अधिक शक्तिशाली होकर बार-बार जागती रहेंगी।’

तो याद रखें; बैचैनी या उदासी जैसा कुछ हो तो उसके प्रति आंखें मूँदकर प्रसन्नता को मत ओढ़ें। वह बस प्रसन्नता का पाखंड होगा। वास्तविक प्रसन्नता उसके सचेतन चुनाव से आती है। सचेतन चुनाव यानि—उदासी आई, तो मैं जानूँ कि यह परिस्थिति ऐसी है जिसका समाधान मेरे प्रफुल्लित होने में है, लेकिन मैं प्रफुल्लित हूँ। उदासी बन गई है। अब यह उदासी समस्या की जगह एक संदेश बन गई, अब मैं सचेतन चुनाव कर सकता हूँ।

को प्रफुल्लता में रूपांतरित कर दे। यह प्रफुल्लता पाखंड नहीं होगी, ऊर्जागत होगी—इसमें दू

हमारी ऊर्जाओं के विधायक रूपांतरण से बाहर की परिस्थिति तो बदले न बदले, लेकिन परिस्थिति को प्रत्युत्तर देने वाली मनःस्थिति बिलकुल बदल जाएगी—जिसके पास अधिक स्वस्थ, अधिक स्पष्ट, अधिक सचेत समाधान होंगे। बेहतर समाधान हमेशा होते ही हैं, बस प्रतीक्षा कर रहे होते हैं कि हम उन्हें आविष्कृत कर लें। ऐसी कोई रात होती ही नहीं जिसके पीछे चटखंडों वाला आकाश प्रतीक्षा न कर रहा हो। यह रोज होता है। बस इतना ही है कि रात आये तो उसे अस्वीकार न करें और उसका उपयोग हम पूरा-पूरा उसलिये कर लें जिस लिये रात हुई है—संपूर्ण विश्राम के लिये। फिर सूर्योदय सिर्फ आकाश में ही नहीं होता, हमारी नस-नस उसकी गवाही देती है।

पहली बात है अपनी ऊर्जा को अनुभव करना।

पहला प्रश्न इस बात का नहीं है कि “उसका उपयोग कैसे करना है?”

पहली बात है: कैसे उसे अनुभव करना

और कैसे उसे सघनता से, समग्रता से अनुभव किया जाए।

और सौंदर्य यह है कि एक बार तुम अपनी ऊर्जा को अनुभव कर लो,

तो यह अंतर्बोध भी उठता है कि उसे कैसे उपयोग करना है।

ऊर्जा तुम्हारा मार्ग-दर्शन करने लगती है।

तुम ऊर्जा का मार्ग-दर्शन नहीं करते: इसके विपरीत,

ऊर्जा अपने आप से ही गति करने लगती है

और तुम बस उसका अनुसरण करते हो। फिर सहजता आती है, फिर मुक्ति आती है।



टूटा छप्पर और तारों की झालरः विपदा को भी संपदा बना लेने की कुंजी

एक सांझ की बात है, आकाश में बादल घिर गए हैं, तेज आंधी चल रही है, बरसात आने को है। आंधी इतनी तेज है कि बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ कर गिर रहे हैं, कुछ दिखायी नहीं दे रहा है। लगता है जैसे प्रलय ही आने को हो। दो भिक्षु, दो संन्यासी भागे हुए जा रहे हैं रास्ते पर अपने झोपड़े की तरफ। वे आठ महीने प्रभु के गीत गाते हुए गांव-गांव धूमे हैं, अब वर्षा के चार महीने उन्हें अपने झोपड़े में रहना है। लौटे हैं तो इस अंधड़े ने बुप्प अंधेरा कर दिया है और जल्दी ही बरसात आने को है। बरसात शुरू होने से पहले झोपड़े तक नहीं पहुंचते हैं तो पहुंच ही नहीं पायेंगे।

वे भागे चले जा रहे हैं। झोपड़ा उन्हें दिखाई पड़ने लगा है। नदी के उस पार, पहाड़ के पास उनका झोपड़ा है। लेकिन जैसे-जैसे वे निकट

आते हैं, वे कुछ हैरान हुए जा रहे हैं। जवान भिक्षु है एक, एक बूढ़ा भिक्षु है। जवान भिक्षु आगे है थोड़ा, बूढ़ा पीछे है। फिर वह जवान भिक्षु देख पाता है कि झोपड़ा तो टूटा पड़ा है। आधा झोपड़ा हवाओं में उड़ गया मालूम होता है, आधा छप्पर जमीन के पास पड़ा हुआ है।

वह भिक्षु तो क्रोध से भर गया है। उसने लौट कर अपने बूढ़े भिक्षु को कहा: देखते हैं, जिस भगवान के गीत गाते फिरते हैं हम, जिस भगवान के लिए श्वासें लेते हैं, जिस भगवान के लिए जीते हैं, वह भगवान इतनी भी फिकर नहीं कर सकता है कि हमारा झोपड़ा बचा ले? ऐसी ही बातों से तो अविश्वास पैदा हो जाता है। ऐसी ही बातों से लगता है कि नहीं है कोई भगवान, सब झूठी है बकवास। गांव में पापियों के महल खड़े हैं, उनमें से किसी का छप्पर नहीं गिर गया और कोई मकान

नहीं टूट गया। और हम भिखारियों के मकान को तोड़ दिया तुम्हारे भगवान ने? अब रखो तुम अपने भगवान को, मुझे छुट्टी दो! बहुत हो गई यह बकवास! भगवान-वगवान कुछ भी नहीं है। अब वर्षा में क्या होगा? वर्षा सिर पर है, बादल आकाश में घिर गए हैं, घुमड़ते हैं, बिजली चमकती है, क्या होगा अब? कहां ठहरोगे? वह इतने क्रोध में है कि देख भी नहीं पाया कि जब वह चिल्ला रहा है तब बूढ़ा भिक्षु क्या कर रहा है?

जब बूढ़े भिक्षु ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो उसने अपनी आंखें पौँछी—क्रोध में उसकी आंखों में धुंध आ गई है, खून आ गया है—लौट कर आंखें खोलीं, तो देखा कि वह भिक्षु बूढ़ा तो हाथ जोड़े आकाश की तरफ बैठा है और उसकी आंखों से आंसू बहे जाते हैं। न मालूम किस आनंद से झिरना बहा जाता है। उसने उसे हिलाया और कहा: क्या करते हो? लेकिन वह बूढ़ा कुछ बुद्बुदा रहा है। वह कह रहा है कि हे भगवान, तेरी कृपा अनूठी है। हवाओं का क्या भरोसा, अंधियों का क्या भरोसा, पूरा झोपड़ा भी उड़ा कर ले जा सकती थीं! आधा बचाया, तो जरूर तूने ही बचाया होगा। जरूर तूने ही बचाया होगा!

वह बुद्बुदा रहा है, उसके हाथ जुड़े हैं, उसकी आंखों से आंसू बहे चले जा रहे हैं, उसके चेहरे पर एक रोशनी झलक रही है। वह यह कह रहा है कि जरूर... अंधियों का क्या भरोसा, अंधी अंधियों का क्या भरोसा, पूरा झोपड़ा उड़ा कर ले जा सकती थीं? जरूर तूने रोका होगा, जरूर तूने बाधा दी होगी, नहीं तो आधा कैसे बचता? धन्यवाद! आधे झोपड़े से भी काम चल जाएगा। जब तूने समझा कि आधा हमारे लिए काफी है, तो हम कैसे समझें कि ना-काफी है? जरूर आधे से काम चल जाएगा। वह जवान तो क्रोध से भर गया है इस बात को सुन कर और।

फिर वे दोनों झोपड़े पर पहुंच गए हैं। बूढ़ा तो ऐसे आनंदमग्न धूम रहा है झोपड़े में, जैसे झोपड़ा महल हो गया हो। जैसे मिट्टी का झोपड़ा सोने का बन गया हो। झोपड़ा टूटा पड़ा है—ध्वंस। और वह जवान क्रोध से भरा हुआ है।

फिर रात उत्तर आई, और बादल चमकने लगे, और बिजलियां गरजने लगीं, और जोर की आवाजें होने लगीं। और वे दोनों सो गए हैं। जवान रात भर करवटे बदल रहा है; उसके मन में क्रोध घना होता जा रहा है। ऊपर आकाश दिखाई पड़ रहा है, बिजली चमक रही है, पानी की बूँदें पड़ने लगी हैं, उसका क्रोध घना होता जा रहा है। लेकिन बूढ़ा बड़ी गहरी शांति में सोया हुआ है। बिजली चमकती है तो उसके चेहरे पर जो प्रकाश आता है उससे लगता है जैसे वह न मालूम किस गहरी नींद में है। शायद नींद में नहीं, वह समाधि में है। शायद वह किसी गहरे ध्यान

में है। वह न मालूम किन गहराइयों में डूबा हुआ है।

सुबह वे दोनों उठते हैं। एक तो रात भर नहीं सोया है, दूसरा रात भर सोया है। सुबह उठ कर ही उस जवान ने फिर गालियां देनी शुरू कर दीं। वह बूढ़ा सुबह उठ कर ही एक गीत लिख रहा है। वह गीत बड़ा प्रसिद्ध है। उस गीत के अर्थ बड़े अनूठे हैं।

उस गीत में वह कहता है—परमात्मा, तू कितना अदभुत है! हमें पता भी नहीं था कि आधे छप्पर में सोने का आनंद क्या है। रात बिजलियां चमकती थीं, तो मेरी रात और मेरी नींद भी उनसे आलोकित हो जाती थीं। आकाश में तारे दिखाई पड़े। कभी आंख खुली, तो तारे दिखाई पड़ गए। नींद में कभी मैंने तारे नहीं देखे थे। और मुझे ख्याल भी न था कि नींद की शांति में तारे कितने प्रतिपूर्ण मालूम होते हैं और उनसे कैसा संबंध जुड़ जाता है! लगा कि आकाश में तूने तारों की ज्ञातर लटका दी है। दिन की रोशनी में देखी थी तेरी प्रकृति, लेकिन रात के जागरण में नींद के मखमली पर्दे से कभी नहीं झांका था कि तेरी दुनिया इतनी अदभुत है! और अब तो मजा हो जाएगा: वर्षा आ गई है, बूँदें टपकेंगी तेरी, आधे छप्पर में हम सोए भी रहेंगे, आधे छप्पर में तेरी बूँदों का संगीत भी रात भर नाचता रहेगा; और कभी भी आंख खुलेगी, तो हम तेरी बूँदों को देख लेंगे। अगर हमें पता होता कि इतना आनंद है, तो हम तेरी हवाओं को कभी तकलीफ न देते, हम खुद ही आधा छप्पर तोड़ देते। लेकिन हमें यह पता ही नहीं था।

यह एक धार्मिक व्यक्ति की जीवन के प्रति दृष्टि है। न तो आपके मंदिर में जाने से आप धार्मिक होते हैं, न आपकी मस्जिद में जाने से आप धार्मिक होते हैं। न आप गीता के चरणों में सिर रखने से धार्मिक होते हैं और न आप कुरान को सिर पर ढोने से धार्मिक होते हैं। न बुद्ध और महावीर की तस्वीरों के सामने धूटने टेकने से आप धार्मिक होते हैं। धार्मिक आदमी की तस्वीर यह है कि धार्मिक आदमी जीवन के कांटों में फूलों को देखने में समर्थ होता है। जीवन की पीड़ाओं में आनंद को देखने में समर्थ होता है। आधे उड़ गए छप्पर में आधे बचे छप्पर को देखने में समर्थ होता है।

और जो एक बार इस आनंद की पुलक से जीवन को देखने में समर्थ हो जाता है, एक किरण भी जिसके जीवन में इस आनंद की उत्तर आती है, धीरे-धीरे-धीरे सारा जीवन रूपांतरित हो जाता है, सब ट्रांसफार्म हो जाता है। फिर उसे कांटे नहीं रह जाते, फिर उसे फूल ही फूल हो जाते हैं। फिर उसे आंसू नहीं रह जाते, फिर उसके लिए गीत ही गीत हो जाते हैं।

अमृत द्वार, प्रवचन 5

रोजमर्रा के प्रश्न व ओशो के समयातीत उत्तर

इस कॉलम के अंतर्गत आप अपने प्रश्न हमें भेज सकते हैं। ओशो के प्रवचनों में से उनके उत्तर ढूँढने का हमारा प्रयास रहेगा।



लॉकडाउन में सुरक्षित, लेकिन अशांत...

प्रश्न : इस लॉकडाउन की शुरुआत तो मेरे लिये ठीक-ठाक ही थी। अचानक परिवार के साथ बहुत सा समय बिताने का अवसर मिल गया था। मेरे लिये आर्थिक पक्ष को भी लेकर कोई चिंता नहीं है क्योंकि मैं अपना काम घर से भी कर सकता हूँ।

परिवार के साथ हूँ
अशांत रहता है। इसका कारण शायद वे सब समाचार भी हो सकते हैं जो यह बताते हैं कि चारों ओर कितना कुछ भयावह चल रहा है। ऐसे लगता है जैसे एक तूफान आया हुआ है, और वही तूफान मेरे भीतर भी चलता रहता है। क्या करूँ?

र भी अब मन अकसर अशांत रहता है। गेलीली झील पर तूफान आया हुआ था। एक नौका डूबती-डूबती हो रही थी। बचाव का कोई उपाय नहीं दिखता था। यात्री और माङ्झी घबड़ा गए थे। अंधियों के थपेड़े प्राणों को हिला रहे थे। पानी की लहरें भीतर आना शुरू हो गई थीं। और किनारे पहुंच से बहुत दूर थे। पर इस गरजते तूफान में भी नौका के एक कोने में एक व्यक्ति सोया हुआ था—शांत और निश्चित। उसके साथियों ने उसे उठाया। सबकी आंखों में आसन्न मृत्यु की छाया थी।

ओशो : एक दोपहर एक पहाड़ी के अंचल में थे। धूप-छाया के विस्तार में बड़ी सुखद घड़ियां बीतीं। निकट ही था एक तालाब और हवा के तेज थपेड़ों ने उसे बेचैन कर रखा था। लहरें उठती-गिरतीं और टूटतीं। उसका सब-कुछ विक्षुब्ध था।

फिर हवाएं सो गईं और तालाब भी सो गया।

मैंने कहा : ‘देखो, जो बेचैन होता है, वह शांत भी हो सकता है। बेचैनी अपने में शांति को छिपाए़ हुए हैं। तालाब अब शांत है, तब भी शांत था।

लहरें ऊपर ही थीं, भीतर पहले भी शांति थी।’

मनुष्य भी ऊपर ही अशांत है। लहरें ऊपर ही हैं, भीतर गहराइ में घना मौन है। विचारों की हवाओं से दूर चलें और शांत सरोबर के दर्शन शुरू हो जाते हैं। यह सरोबर ‘अभी और यहीं’ पाया जा सकता है।

उस व्यक्ति ने उठ कर पूछा : ‘इतने भयभीत क्यों हो ?’ जैसे भय की कोई बात ही न थी ! उसके साथी अवाक रह गए। उनसे कुछ कहते भी तो नहीं बना। उसने पुनः पूछा : ‘क्या अपने आप पर बिलकुल भी आस्था नहीं है ?’ इतना कह कर वह शांति और धीरज से उठा और नाव के एक किनारे पर गया। तूफान आखिरी चोटें कर रहा था। उसने उस विक्षुब्ध हो गई झील से जाकर कहा : ‘शांति, शांत हो जाओ।’

तूफान जैसे कोई नटखट बच्चा था। ऐसे ही उसने कहा था : ‘शांत हो जाओ।’

यात्री समझे होंगे कि यह क्या पागलपन है! तूफान क्या किसी की मानेगा? लेकिन उनकी आंखों के सामने ही तूफान सो गया था और झील ऐसी शांत हो गई थी कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं है।

उस व्यक्ति की बात मान ली गई थी।

वह व्यक्ति था जीसस क्राइस्ट। और यह बात है दो हजार वर्ष पुरानी। पर मुझे यह घटना रोज ही घटती मालूम होती है।

क्या हम सभी निरंतर एक तूफान, एक अशांति से नहीं घिरे हुए हैं? क्या हमारी आंखों में भी निरंतर आसन्न मृत्यु की छाया नहीं है? क्या हमारे भीतर चित की झील विक्षुब्ध नहीं है? क्या हमारी जीवन-नौका भी प्रतिक्षण डूबती-डूबती मालूम नहीं होती है?

तब क्या यह उचित नहीं है कि हम अपने से पूछें : ‘इतने भयभीत क्यों हो? क्या अपने आप पर बिलकुल भी आस्था नहीं है?’ और फिर अपने

भीतर झील पर जाकर कहें : ‘शांति, शांत हो जाओ।’

मैंने यह कह कर देखा है और पाया है कि तूफान सो जाता है। केवल शांत होने के भाव करने की ही बात है और शांति आ जाती है। अपने भाव से प्रत्येक अशांत है। अपने भाव से शांत भी हो सकता है। शांति उपलब्ध करना अभ्यास की बात नहीं है। केवल सदभाव ही पर्याप्त है।

शांति तो हमारा स्वरूप है। घनी अशांति के बीच भी एक केंद्र पर हम शांत हैं। एक व्यक्ति यहां तूफान के बीच भी निश्चित सोया हुआ है। इस शांत, निश्चल, निश्चित केंद्र पर ही हमारा वास्तविक होना है। उसके होते हुए भी हम अशांत हो सके हैं, यही आश्चर्य है। उसे वापस पा लेने में तो कोई आश्चर्य नहीं है।

शांत होना चाहते हो तो इसी क्षण, अभी और यहीं शांत हो सकते हो। अभ्यास भविष्य में फल लाता है, सदभाव वर्तमान में ही। सदभाव अकेला वास्तविक परिवर्तन है।

मिठी के दीये

यह मुझे क्या हो रहा है... ?

प्रश्न : लॉकडाउन में अकेला अपने घर में बंद हू

जा सकता है और न किसीको घर पर आमंत्रित किया जा सकता है जिससे एक खालीपन सा लगता है। देख रहा हू
लिये दिन भर फोन पर लंबी-लंबी बातें करता रहता हू
या टी वी खोलकर बैठ जाता हू
कर रहा हू

चेतन, दिल्ली

ओशो : एक राजा ने किसी सामान्यतः स्वस्थ और संतुलित व्यक्ति को कैद कर लिया था—एकाकीपन का मनुष्य पर क्या प्रभाव होता है, इस अध्ययन के लिए। वह व्यक्ति कुछ समय तक चीखता-चिल्लाता रहा। बाहर जाने के लिए रोता था, सिर पटकता था—उसकी सारी सत्ता जो बाहर थी। सारा जीवन तो ‘पर’ से, अन्य से बंधा था। अपने में तो वह कुछ भी नहीं था। अकेला होना, न होने के ही बराबर था।

और सच ही वह धोरे-धोरे टूटने लगा। उसके भीतर कुछ विलीन होने लगा, चुप्पी आ गई। रुदन भी चला गया। आंसू भी सूख गए। और आंखें ऐसे देखने लगीं, जैसे पत्थर की हों। वह देखता हुआ भी लगता कि जैसे नहीं देख रहा है।

दिन बीते, माह बीते, वर्ष बीत गया। उसकी सुख-सुविधा की सब व्यवस्था थी। जो उसे बाहर उपलब्ध नहीं था, वह सब कैद में उपलब्ध था। शाही आविष्य जो था! लेकिन वर्ष पूरा होने पर विशेषज्ञों ने कहा : ‘वह पागल हो गया है।’

ऊपर से वह वैसा ही था। शायद ज्यादा ही स्वस्थ था। लेकिन भीतर?

भीतर एक अर्थ में वह मर ही गया था।

मैं पूछता हू

कता है?

एकाकीपन कैसे पागल करेगा? वस्तुतः पागलपन तो पूर्व से ही है। बाह्य संबंध उसे छिपाए थे। एकाकीपन उसे अनावृत कर देता है।

मनुष्य की अपने को भीड़ में खोने की अकुलाहट उससे बचने के लिए ही है। प्रत्येक व्यक्ति इसलिए ही स्वयं से पलायन किए हुए है। पर यह पलायन स्वास्थ्य नहीं कहा जा सकता है। तथ्य को न देखना, उससे मुक्त होना नहीं है। जो नितांत एकाकीपन में स्वस्थ और संतुलित नहीं है, वह धोखे में है। यह आत्मवंचना कभी न कभी खंडित होगी ही। और वह जो भीतर है, उसे उसकी परिपूर्ण नगनता में जानना होगा। यह अपने आप अनायास हो जाए तो व्यक्तित्व छिन्न-भिन्न और विक्षिप्त हो जाता है। जो दमित है, वह कभी न कभी विस्फोट को भी उपलब्ध होता है।

धर्म इस एकाकीपन में स्वयं होकर उतरने का विज्ञान है। क्रमशः एक-एक परत उघाड़ने पर अदभुत सत्य का साक्षात होता है। धोरे-धोरे ज्ञात होता है कि वस्तुतः हम अकेले ही हैं। गहराई में, आंतरिकता के केंद्र पर प्रत्येक एकाकी है। और उस एकाकीपन से परिचित न होने के कारण भय मालूम होता है। अपरिचय और अज्ञान भय देता है। परिचित होते ही भय की जगह अभय और आनंद ले लेता है। एकाकीपन के धेरे में स्वयं सच्चिदानंद विराजमान है।

अपने में उतर कर स्वयं प्रभु को पा लिया जाता है। इसीलिये कहता है अकेलेपन से, अपने से भागो मत, वरन अपने में डूबो। सागर में डूब कर ही मोती पाए जाते हैं।

ग्रांतिबीज

अतीशा की हृदय विधि

करुणा की ऊर्जा को जगाकर दुख को आनंद में रूपांतरित करने का प्रयोग

ब्रह्म-तंत्र मार्ग के महागुरु अतीशा की देशनाओं पर आधारित इस विधि में अपने स्वयं के व संसार के हर प्राणी के दुखों को भीतर आती श्वास के साथ अपने भीतर प्रवेश करके हृदय तक पहुंचने दिया जाता है। हृदय में एक जादुई क्षमता है, जो ऊर्जा को तत्क्षण रूपांतरित कर देती है। आप दुख व पीड़ा को भीतर ले जाते हैं, और हृदय उसे आनंद में रूपांतरित कर देता है। फिर, बाहर जाती प्रश्वास के साथ आप उस आनंद को सारे अस्तित्व में उंडेल देते हैं। इस ध्यान का कोई निर्धारित ढांचा नहीं है, यहां जो विधि दी जा रही है वह इस ध्यान के प्रयोग की शुरूआत करने में सहयोगी है। बाट में आप जैसे-जैसे इस प्रयोग में गहरे जायें, आप विधि को अपनी अंतःअनुभूति के अनुसार ढाल सकते हैं।

यह प्रयोग 50 मिनट का है और इसमें चार चरण हैं। पहले तीन चरणों में आप चाहें तो खड़े रह सकते हैं, बैठ सकते हैं या लेट जायें—जो भी रुचाभाविक रूप से हो। आंखें खुली रखना चाहें तो खुली रख सकते हैं, बरना बंद कर लें।

पहला चरण : 5 मिनट

(हृदय में प्रवेश)

अपना सारा ध्यान अपने शरीर व श्वास पर ले आयें, अपनी सारी ऊर्जा को वर्तमान क्षण में समेट लें।

फिर अपनी सारी चेतना को अपनी छाती के मध्य में, अपने हृदय केंद्र पर ले आयें। एक हल्के से दबाव के साथ अपने दोनों हाथ अपने हृदय केंद्र पर ले आना उसे महसूस करने में सहयोगी हो सकता है।

हर भीतर आती श्वास को हृदय में आत्मसात हो जाने दें, और हर प्रश्वास को हृदय से ही बाहर उंडेलें।

दू

(स्वयं से शुरूआत करें)

अपने स्वयं के दुखों से शुरू करें। आपके पूरे जीवन के जो भी घाव हैं, जो पीड़ाएं हैं, जो दुख हैं उन्हें जितनी सघनता से अनुभव कर सकें, करें। अपने दुख को स्वीकार करें, उसका स्वागत करें।

महसूस करें कि आपके सारे दुख आपकी श्वास के साथ भीतर आ रहे हैं, उन्हें अपने हृदय में आत्मसात हो जाने दें। देखें कि वहां दुख प्रफुल्लता में, आनंद में बदल रहा है।

इस प्रफुल्लता व आनंद को प्रश्वास के साथ बाहर अस्तित्व में उंडेल दें।

हो सकता है कि आपके भीतर उस समय जो भी हो रहा हो उसे आप किसी ध्वनि, गति या मुद्रा के के साथ अभिव्यक्त करना चाहें, या आप उसे मौन में घटने देना चाहें—जो भी हो होने दें।

तीसरा चरण : 15 मिनट

(संसार के सभी लोगों को समाहित करें)

अब इस प्रक्रिया को विस्तार दें। अब श्वास के साथ हर प्राणी के दुख को बेशर्त भीतर ले जायें—मित्र हो कि शत्रु, प्रियजन हों कि अजनबी। उसको स्वीकार करें, उसका स्वागत करें।

संसार का यह सारा दुख, यह सारी पीड़ा भीतर ले जायें...उसे हृदय में आत्मसात कर लें...उसे प्रफुल्लता में, आनंद में रूपांतरित हो जाने दें। हो सकता है कि आपके भीतर उस समय जो भी हो रहा हो उसे आप किसी ध्वनि, गति या मुद्रा के के साथ अभिव्यक्त करना चाहें, या आप उसे मौन में घटने देना चाहें—जो भी हो होने दें।

चौथा चरण : 15 मिनट

(वापस लौट आयें)

अब अपना ध्यान संसार से, दू

तरह हटा लें। लेट जायें, आंखें बंद कर लें, कुछ भी न करें। बस मौन और शांत लेटे रहें।

नोट :

एक बार आप यह अनुभव कर लेते हैं कि पीड़ा को श्वास और हृदय के माध्यम से कैसे प्रफुल्लता में रूपांतरित किया जा सकता है, तो आप चुपचाप इस विधि को कभी भी कर सकते हैं—जब भी जीवन की कोई घटना दुख, उदासी या पीड़ा की प्रक्रिया को शुरू करती है।

हृदय विधि पर ओशो की अंतर्दृष्टि

यह महानतम विधियों में से है—जब श्वास लो तो सोचो कि तुम संसार के सभी लोगों के सभी दुख पी रहे हो, तो जितना भी अंधकार है, जितने भी नकार हैं, जितने भी नरक हैं, तुम उन सबको पी रहे हो। और इसे अपने हृदय में लीन हो जाने दो।

तुमने पश्चिम के विधायक चितकों के विषय में पढ़ा या सुना होगा। वे इससे बिलकुल विपरीत बात कहते हैं—वे नहीं जानते वे क्या कह रहे हैं। वे कहते हैं, जब तुम श्वास छोड़ो, तो उसके साथ अपने सभी दुख और नकार बाहर निकाल दो। और जब श्वास लो तो आनंद, विधायकता, सुख और प्रफुल्लता को भीतर लो।

अतीशा की विधि बिलकुल विपरीत है: जब तुम श्वास लो तो संसार के अतीत, वर्तमान और भविष्य के सभी प्राणियों के दुख और पीड़ाएं पी लो।

और जब श्वास छोड़ो, तो अपने सारे सुख, अपने सारे आनंद, अपनी सारी धन्यता बाहर छोड़ो। श्वास छोड़ो तो स्वयं को अस्तित्व में उंडेल दो। यही करुणा की विधि है: सभी दुख पी लो और सभी आशीष उंडेल दो।

और इसे करो तो तुम चकित होओगे। जिस क्षण तुम संसार के सभी दुख भीतर ले लेते हो, वे दुख नहीं रहते। हृदय तत्क्षण ऊर्जा को रूपांतरित कर देता है। हृदय रूपांतरण की शक्ति है: दुख को पीओ, और वह आनंद में रूपांतरित हो जाता है...फिर उसे बाहर उंडेल दो।

एक बार तुम जान जाओ कि तुम्हारा हृदय यह जादू, यह चमत्कार कर सकता है, तो तुम इसे फिर-फिर करना चाहोगे। इसे करके देखो। यह सबसे व्यावहारिक विधियों में से है, सरल है और तात्कालिक परिणाम लाती है। इसे आज ही करो, और देखो।

स्वयं से शुरू करो

अतीशा कहते हैं: इससे पहले कि तुम यह प्रयोग पूरे अस्तित्व के साथ कर सको, तुम्हें पहले स्वयं से ही शुरू करना होगा। यह अंतर-विकास के बुनियादी रहस्यों में से एक है। दूसरों के साथ तुम वह कर ही नहीं सकते जो तुमने पहले स्वयं के साथ न कर लिया हो। तुम दूसरों को तभी पीड़ा दे सकते हो यदि स्वयं को पीड़ा देते हो, और दूसरों के लिए आशीष भी तुम तभी बन सकते हो यदि तुम स्वयं के लिए एक आशीष हो।

दूसरों के साथ तुम जो भी कर सकते हो, वह जरूर तुमने पहले

अपने साथ किया होगा, क्योंकि वही तो तुम बांट सकते हो। तुम वही बांट सकते हो जो तुम्हारे पास है, जो तुम्हारे पास नहीं है वह तुम नहीं बांट सकते।

संसार के सारे दुखों को लेकर अपने हृदय में पीने की अपेक्षा अपने ही दुख से शुरू करो। गहरे सागर में इतनी जल्दी मत जाओ; पहले उथले पानी में तैरना सीखो। और यदि तुम एकदम से ही पूरे अस्तित्व के दुख लेने लगते हो तो वह मात्र काल्पनिक प्रयोग ही रह जाएगा। वह वास्तविक नहीं होगा, वह वास्तविक नहीं हो सकता। वह शाब्दिक ही होगा।

पहले तुम्हें स्वयं से ही शुरू करना होगा। यदि तुम दुखी हो रहे हो, तो इसे एक ध्यान बन जाने दो। मौन बैठ जाओ, द्वार बंद कर लो। पहले दुख को जितनी सघनता से हो सके अनुभव करो। पीड़ा को महसूस करो।

दुख को अनुभव करो, पीड़ा को अनुभव करो, उससे बचो मत। यदि तुम उसका अनुभव कर सको—इसका बड़ा महत्व है—तब उसे अवशोषित करना शुरू करो। उसे बाहर मत फेंको। वह इतनी मूल्यवान ऊर्जा है, कि उसे फेंको मत। उसे पचाओ, उसे पीओ, उसे स्वीकार करो, उसका स्वागत करो, उसके प्रति अनुगृहीत होओ। और स्वयं को ही कहो, इस बार मैं इसे टालूंगा नहीं, इस बार मैं इसे अस्वीकृत नहीं करूंगा, इस बार मैं इसे दूर नहीं फेंकूंगा। इस बार तो मैं इसे पीऊंगा और एक अतिथि की भाँति इसका स्वागत करूंगा। इस बार मैं इसे पचा लूंगा।

हो सकता है इसमें कुछ दिन लग जाएं कि तुम इसे पचा सको, लेकिन जिस दिन यह होता है, तुम ऐसे द्वार पर आ खड़े होते हो जो तुम्हें बहुत-बहुत दूर ले जाएगा। तुम्हारे जीवन में एक नई यात्रा शुरू हो गई, तुम एक नये प्रकार की सत्ता में प्रवेश कर रहे हो—क्योंकि जिस क्षण तुम पीड़ा को बिना किसी अस्वीकार के स्वीकृत कर लेते हो, तत्क्षण ही उसकी ऊर्जा और गुणवत्ता बदल जाती है। वह पीड़ा नहीं रहती।

वास्तव में व्यक्ति चकित रह जाता है, यह घटना इतनी अविश्वसनीय है कि विश्वास ही नहीं हो पाता। कोई विश्वास ही नहीं कर सकता कि विषाद को आनंद में बदला जा सकता है, कि पीड़ा को आहाद में बदला जा सकता है।

ध्यानयोग: प्रथम और अंतिम मुक्ति

आइये, घर के भीतर एक ताज़ी धूप ले चलें...

ओशो की अंतर्दृष्टि

व उनके द्वारा सुझाये कुछ प्रयोगः

लॉकडाउन की बेचैनी, उदासी व अकेलेपन को

बदलें प्रफुल्लता व करुणा में

आपदा का समय खतरनाक भी होता है और अत्यंत मूल्यवान भी। खतरनाक उनके लिये, जिनमें जीवन के नये आयामों का अन्वेषण करने का साहस नहीं होता। जिनका मन समाज के सामूहिक अचेतन से बंधा होगा, वे बिखरने लगेंगे, क्योंकि आपदा के समय समाज का सामूहिक अचेतन बिखरने लगता है। ऐसा मन कई तरह के पागलपन में गिर सकता है, निराशा में गिर सकता है, आत्मघाती हो सकता है। लेकिन जिसके प्राणों में जोखिम उठाने का साहस हो, वह आपदा के समय को दर्जिम अवसर में बदल लेगा।

सामूहिक अचेतन से रवयं को तोड़ लेना सबसे बड़ा साहसिक अभियान है, और आपदा के समय यह बहुत आसान होता है क्योंकि इस समय सामाजिक मन कमजोर पड़ने लगता है। जोल की दीवारें जब कमजोर होने लगें तो उन्हें तोड़कर उनसे बाहर निकल आना आसान होता है।

जो साहसी होंगे वे आपदा के समय का उपयोग सामूहिक अचेतन से बाहर आने के लिये कर लेंगे, मन के पार जाने के लिये कर लेंगे। वे हर निराशा को आनंद में बदल लेंगे—अपने भीतर एक नये मनुष्य के सृजन का आनंद।

ओशो

आपदायें आती रही हैं

और आती रहेंगी

इस अवसर का उपयोग जागने के लिये कर लो

और यही तुम कर सकते हो

आपदा का समय तुम्हें जीवन की वास्तविकता के प्रति जगा देता है। जीवन की वास्तविकता सदा ही बहुत नाजुक है; हर कोई सदा ही खतरे में है। बस इतना ही है कि साधारण समय में तुम गहरी नींद सोये रहते हो, तो तुम जीवन की वास्तविकता को देख नहीं पाते: तुम सपने देखते रहते हो, आने वाले दिनों और भविष्य की सुंदर कल्पनाओं में खोये रहते हो। लेकिन खतरा जब तुम्हारे सामने आकर खड़ा हो जाता है तो अचानक तुम्हें भान होता है कि शायद अब कोई भविष्य हो ही न, कि शायद कल आये ही नहीं, कि यह क्षण ही है जो तुम्हारे पास है।

तो, आपदा के क्षण एक परदा उठा देते हैं। वे संसार में कुछ नया लेकर नहीं आते, वे केवल तुम्हें जगत और जीवन के स्वभाव से अवगत करा देते हैं—वे तुम्हें जगा देते हैं। यदि तुम इसे न समझ पाओ तो तुम पागल हो जा सकते हो; लेकिन यदि समझ पाओ तो बुद्धत्व में जाग सकते हो।

यह तुम पर निर्भर है कि आपदा के समय का तुम कैसे उपयोग करते हो: तुम घबराहट में जा सकते हो, तुम पागल हो सकते हो, तुम भय से बिखर सकते हो, अपने प्रियजनों की सुरक्षा के लिये चिंतित होकर तुम दुख में डूब सकते हो। लेकिन इससे न तो तुम्हारे प्रियजनों का कोई भला होगा और न तुम्हारा।

आपदा ऐसी परिस्थिति निर्मित कर देती है कि जिनमें जरा सी भी प्रतिभा है वे अपना अधिक से अधिक समय ध्यान को देने लगें, क्योंकि अब कल अनिश्चित है। कल सदा ही अनिश्चित होता है, लेकिन अब उसकी अनिश्चितता साफ दिखायी दे रही है। इस क्षण का उपयोग तुम एक महान क्षण के रूप में कर सकते हो।

आपदा के समय में प्रतिभावान व्यक्ति इस समझ से भर सकता है कि जीवन सदा ही खतरे में है।

तुमने यह पुरानी कहावत सुनी होगी: ‘मत पूछो कि चर्च की घंटी किसके लिये बज रही है, वह सदा ही तुम्हारे लिये बजती है।’ जब

गांव में कोई मरता है तो पूरे गांव को उसके मरने की खबर देने के लिये चर्च में घंटी बजाई जाती है। यह कहावत कहती है कि जब चर्च में घंटी बजे तो यह पूछने का कष्ट मत करो कि वह किसके लिये बजी—मरा चाहे कोई भी हो, हर मृत्यु तुम्हारी अपनी मृत्यु की खबर है। हर मृत्यु इस बात का ऐलान है कि तुम सदा यहां नहीं रहने वाले। हर मृत्यु जागने का एक अवसर है। इससे पहले कि मृत्यु आए, जीवन के अवसर का उपयोग उसे जानने के लिये कर लो जो मृत्यु के पार है।

आपदा के समय में चिंतित होने में कोई सार नहीं है क्योंकि चिंता में तुम इस क्षण से छूक जाओगे, और तुम्हारी चिंता से किसीका भला होगा नहीं। और ऐसा नहीं है कि तुम और तुम्हारे प्रियजन आज खतरे में हैं, पूरा संसार हमेशा ही खतरे में है। कोई आज खतरे में है, कोई कल खतरे में होगा—लेकिन खतरा सदा है। तो, क्यों न यह राज जान लो कि खतरे का कैसे अतिक्रमण किया जाये।

और राज बस इतना है कि जो भी क्षण तुम्हारे हाथ में हो, उसे समग्रता में जीयो। अपने होश को जाग्रत करो ताकि अपने भीतर तुम उस बिंदु तक पहुंच सको जहां मृत्यु नहीं पहुंच सकती। वह बिंदु ही एकमात्र आश्रय है, एकमात्र सुरक्षा है। और यदि तुम अपने मित्रों और अपने परिवार की मदद करना चाहते हो, तो उन्हें भी इस राज से परिचित होने दो।

आपदायें आती रही हैं और आती रहेंगी। इस अवसर का उपयोग जागने के लिये कर लो—और यही तुम कर सकते हो।

जीवन में जो कुछ भी आये, उसके सही उपयोग पर निर्भर करता है कि कैसे तुम उससे निखरकर बाहर आते हो। और जब कोई आपदा आती है तो बड़ा खतरा लाती है, लेकिन उतना ही बड़ा अवसर भी लाती है।

दि पाथ ऑफ दि मिस्टिक, प्रवचन 4

महामारी और मनुष्य-चेतना

अलग-अलग जीवन, अलग-अलग प्रतिक्रियाएं...

प्रश्न : जब संसार में लोग स्वयं को ऐसी किसी विनाशात्मक महामारी के बीच पाते हैं जिसे रोका ही न जा सके और जो उनमें से बहुत लोगों को मार सकती है जिन्हें वे जानते हैं, तो उस समय मनुष्य की चेतना के साथ क्या होता है?

ओशो : यह अलग-अलग लोगों पर निर्भर करता है। जो व्यक्ति पूरी तरह से चेतन है उसकी चेतना पूरी तरह अनछुर्झ रहेगी। वह इसे भी वैसे ही स्वीकार करेगा जैसे वह हर चीज को स्वीकार करता है। उसे न तो कोई विषाद होगा, न कोई बेचैनी।

जैसे वह अपनी मृत्यु को स्वीकार करता है, वह पूरे ग्रह की मृत्यु को भी स्वीकार कर लेगा। और यह स्वीकार का भाव किसी असहाय दशा से नहीं आयेगा, बल्कि इस अंतर्दृष्टि से आयेगा कि यहीं चीजों का स्वभाव है—हर चीज पैदा होती है, जीती है, और उसे मरना भी है।

चालीस लाख साल पहले पैंथी ग्रह नहीं था; फिर यह जन्मा। शायद यह अपना पूरा जीवन जी चुका है। राजनेता जिस संकट में हमें ले आये हैं, यदि मनुष्य की चेतना स्वयं को उससे बाहर निकाल पाने में सफल हो भे जाये, तो भी यह ग्रह बहुत लंबे समय तक नहीं जी सकता क्योंकि हमारा सूर्य मर रहा है। चार हजार वर्ष में उसकी पूरी ऊर्जा चुक चुकी होगी। और एक बार सूर्य चुक जाता है तो यह ग्रह जिंदा नहीं रह सकता।

एक पूरी तरह से चेतन व्यक्ति महामारी को भी एक प्राकृतिक घटना की तरह स्वीकार करेगा। अभी वृक्ष से पते झार रहे हैं; कल शाम तेज हवाएं चल रही थीं और वृक्षों से पते ऐसे गिर रहे थे जैसे बरसात हो रही हो। अब इसमें तुम क्या कर सकते हो? यह अस्तित्व का नियम है। हर चीज साकार होती है और निराकार में खो जती है। तो जाग्रत पुरुष की चेतना में कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। लेकिन बेहोशी में सोये हुए लोगों में अलग-अलग प्रतिक्रियाएं होंगी।

बेहोश लोगों का पूरा जीवन उनकी प्रतिक्रियाओं में प्रतिबिंबित होगा। जब मृत्यु करीब होती है तो वह तुम्हारे असली व्यक्तित्व को उधाड़ देती है।

हर व्यक्ति जीवन में अलग-अलग रास्तों पर चलता रहा है इसलिये सबकी प्रतिक्रियाएं अलग-अलग होंगी, लेकिन कुछ बातें निश्चित तौर पर कहीं जा सकती हैं:

अकेले होने का भाव

मृत्यु का वातावरण अचानक तुम्हारे सारे मुखोंटे उतार देता है, अचानक इस तथ्य के प्रति जगा देता है कि तुम अकेले हो और तुम्हारे सभी संबंध एक धोख हैं, अपने अकेलेपन को भुलाने के उपाय हैं। बहुत से लोग भयभीत होकर संबंधों को और जकड़ना चाहेंगे। बहुत से संबंध बिखर जायेंगे। और बहुत से लोग अकेलेपन की सत्यता को अनुभव करने के लिये अपने भीतर उतरेंगे।

सेक्स का भाव

अचेतन लोगों के मन में मृत्यु के समय सबसे गहरा भाव सेक्स का होता है। क्योंकि सेक्स और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम हैरान होगे जानकर कि बहुत से लोग जिन्हें फांसी दी जाती है, फांसी से पहले उनका वीर्य स्खलित हो जाता है।

जब पूरा संसार मर रहा हो तो अधिकांश अचेतन लोग जिन्होंने अपने काम का दमन किया है, केवल सेक्स के विषय में ही सोचेंगे। क्यों? क्योंकि मृत्यु सामने है और अचेतन रूप से वे अपने वीर्य को किसी नये गर्भ में पहुंचा देना चाहेंगे—किसी रूप में वे जीवित रहें...।

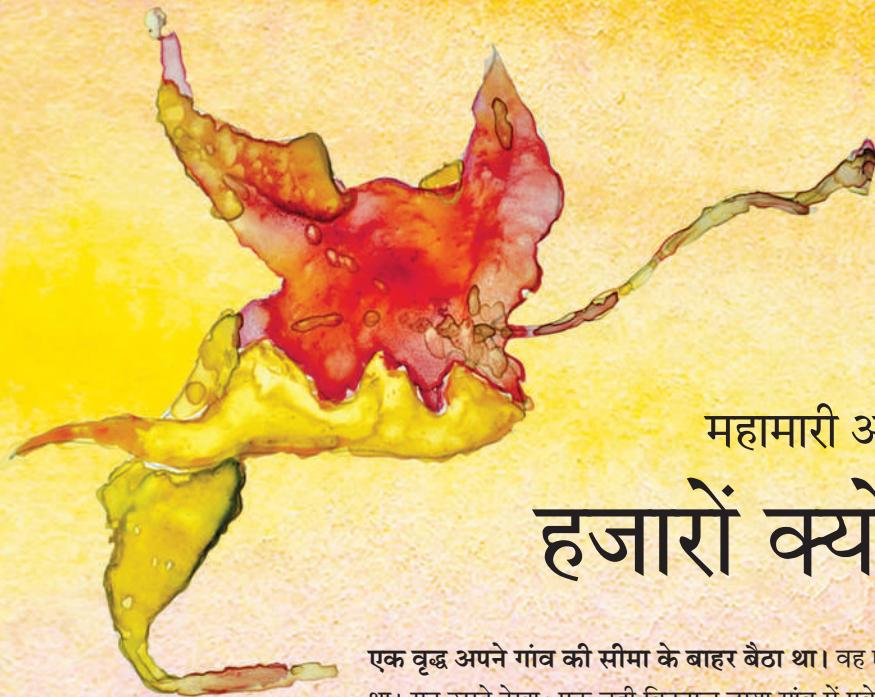
लेकिन यह अलग-अलग लोगों पर निर्भर करता है कि वे कैसे जिये हैं। जो लोग प्राकृतिक जीवन जिये हैं, जिन्होंने हर क्षण को उसकी समग्रता में जिया है वे पूरी परिस्थिति को एक नाटक की तरह देखेंगे। वे साक्षी हो जायेंगे। वे जानेंगे कि वसंत के बाद पतझड़ आता है और पतझड़ के बाद फिर वसंत।

भय से विक्षिप्त

बेहोश लोग भय से घबरा जायेंगे, और ऐसी चीजें करने लगेंगे जो उन्होंने कभी नहीं की। वे जो कुछ दमित करते आये थे उसे नियंत्रित नहीं कर पायेंगे। उनमें बहुत सी नकारात्मकताएं उभर आयेंगी क्योंकि वे पूरी स्थिति को 'ना' कह रहे हैं।

चेतन लोग विक्षिप्त नहीं होंगे क्योंकि उन्होंने कुछ दमित ही नहीं किया हुआ है। वे तो प्रकृति को केवल एक ही शब्द कहना जानते हैं—‘हां’। वे शांत होंगे, आनंदित होंगे।

दि हिंडन स्प्लेंडर, प्रवचन 12



महामारी आयी पांच सौ को मारने हजारों क्यों मर गये ?

एक वृद्ध अपने गांव की सीमा के बाहर बैठा था। वह एक फकीर था और गांव के बाहर ही रहता था। रात उसने देखा : एक बड़ी विकराल छाया गांव में प्रवेश कर रही है—एक विकराल छाया मात्र। उसने पूछा कि तुम कौन हो ?

सुनाइ पड़ा कि मैं महामारी हूँ

उसने कहा : सिर्फ पांच सौ लोगों को न ?

वह छाया बोली, हाँ तीन दिन गांव में रहूँ

लेकिन तीन दिन में तो कई हजार लोग गांव में नष्ट हो गए। वह वृद्ध सजग रहा कि तीसरे दिन जब वह लौटे छाया, तो मैं उससे पूछूँ कि यह क्या हुआ ? धोखा दिया ? वह छाया तीसरे दिन रात को वापस लौटती थी। उस वृद्ध ने कहा कि ठहरो और मुझे बताओ कि मुझे धोखा दिया और झूठ बोली। तुमने कहा कि पांच सौ लोगों को नष्ट करूँगी। तीन दिन में तो हजारों लोग नष्ट हो गए।

वह महामारी बोली : मैंने तो पांच सौ लोग नष्ट किए, बाकी लोग भय से नष्ट हो गए। वे मैंने नष्ट नहीं किए हैं। मेरा जिम्मा पांच सौ का, बाकी सब अपने से मर गए हैं।

भयभीत व्यक्ति को रस्सी देखकर भी हार्ट अटैक आ जाता है—लगता है कि सांप आ गया। भय तुम्हारे सामने की वास्तविकता को बदल देता है। तुम वह देखने लगते हो जो ही नहीं। क्योंकि भय तुम्हें संकुचित कर देता है, तुम्हारी देखने और समझने की क्षमताओं को पंगु कर देता है।

भय तुम्हें जीवन से तोड़ता है। भय तुम्हें मृत्यु से जोड़ता है। जो भी क्षण तुम्हारे पास हो, उसमें से जीवन को निचोड़ना सीखो। फिर तुम फैलते हो। उस फैलाव में भय ठहरता ही नहीं। जहां परिपूर्ण जीवन हो वहां भय ठहर ही नहीं सकता। फिर मृत्यु भी सामने आ खड़ी हो तो तुम उसमें से भी रस की एक-एक बूंद निचोड़ लोगे, क्योंकि तुम्हें कला आ गयी।

सूफीज़ : दि पीपल ऑफ पाथ

उदास हैं?

तो नाचें, और उदासी को
उत्सव में बदल लें...

आज अगर उदासी का क्षण है, तो उदासी में ही नाचो। नाचने से उदासी बिखर जाएगी। जैसे सूरज निकल आया और बादल हट जाए, ऐसे तुम अगर सच में नाचे, तो बादल हट जाएंगे। अगर तुमने गाया और नाचे, तो तुम जल्दी ही पाओगे, तुम्हें पता ही न चलेगा, कब उदासी में शुरू हुआ गीत, उदासी को मिटा गया। कब उदासी में उठे पैर, नृत्य...। उदासी कब खो गई, पता नहीं चलेगा। अचानक तुम पाओगे, उदासी नहीं है, अब तुम नाच रहे हो।

जीवन के प्रत्येक अनुभव से नृत्य निकल सकता है। जीवन के प्रत्येक अनुभव को उत्सव बनाया जा सकता है। और यहीं तो कला है धर्म की कि तुम जीवन के प्रत्येक अनुभव से...

उदासी हो, उत्सव तो हो ही सकता है। उत्सव में किसी चीज से कोई बाधा नहीं पड़ती। यह एक गलत दृष्टि है तुम्हारी कि आज उदास हैं तो कैसे नाचें, जब खुश होंगे, तभी नाचेंगे। तब तुम कभी भी न नाचोगे। क्योंकि उदास तुम आज हो। इसी उदासी को ढोओगे, इससे खुशी कैसे निकलेगी? तुम्हारी खुशी में भी उदासी का बोझ होगा। तुम्हारी खुशी भी उदासी से दबी होगी। तुम खुश भी होओगे, तो समग्रता से न हो पाओगे। तुम हँसोगे भी, तो तुम्हारी हँसी पूरी न होगी, पीछे पत्थरों का बोझ अटका रहेगा।

हर नाच के बाद तुम पाओगे, तुम इतने ताजे होकर वापस आए, जैसे भीतर का एक स्नान हो गया। तुम मत रुको कभी इस कारण कि उदासी मालूम पड़ती है।

पिव पिव लागी प्यास, प्रवचन 4



चिंतित हैं?

एक छोटा सा प्रयोग करें और चिंता से बाहर आ जायें

जब तुम चिंता अनुभव करो, बहुत चिंताग्रस्त होओ, तब इस विधि का प्रयोग करो। इसके लिए क्या करना होगा? जब साधारणतः तुम्हें चिंता घेरती है तब तुम क्या करते हो? सामान्यतः क्या करते हो? तुम उसका हल ढूढ़ते हो; तुम उसके उपाय ढूढ़ते हो। लेकिन ऐसा करके तुम और भी चिंताग्रस्त हो जाते हो, तुम उपद्रव को बढ़ा लेते हो। क्योंकि विचार से चिंता का समाधान नहीं हो सकता है; विचार के द्वारा उसका विसर्जन नहीं हो सकता है। कारण यह है कि विचार खुद एक तरह की चिंता है। विचार करके तुम चिंता को बढ़ाते हो। विचार के द्वारा तुम उससे बाहर नहीं आ सकते, बल्कि तुम उसके दलदल में और भी धंसते जाओगे। यह विधि कहती है कि चिंता के साथ कुछ मत करो; सिर्फ सजग होओ, बस सावचेत रहो।

मैं तुम्हें एक झेन सदगुरु बोकोजू के संबंध में एक पुरानी कहानी सुनाता हूँ वह एक गुफा में अकेला रहता था, बिलकुल अकेला। लेकिन दिन में या कभी-कभी रात में भी, वह जोरों से कहता था, ‘बोकोजू।’ यह उसका अपना नाम था। और फिर वह खुद कहते हैं, ‘हां महोदय, मैं मौजूद हूँ नहीं होता था। उसके शिष्य उससे पूछते थे, ‘क्यों आप अपना ही नाम पुकारते हैं, और फिर खुद कहते हैं, हां, मैं मौजूद हूँ

बोकोजू ने कहा, ‘जब भी मैं विचार में डूबने लगता हूँ पड़ता है, और इसीलिए मैं अपना नाम पुकारता हूँ ’कोजू! जिस क्षण मैं बोकोजू कहता हूँ द हूँ विलीन हो जाती है।’

फिर अपने अंतिम दिनों में, आखिरी दो-तीन वर्षों में उसने कभी अपना नाम नहीं पुकारा, और न ही यह कहा कि हां, मैं मौजूद हूँ आप ऐसा क्यों नहीं करते?’ बोकोजू ने कहा, ‘अब बोकोजू सदा मौजूद रहता है। वह सदा ही मौजूद है, इसलिए पुकारने की जरूरत न रही। पहले मैं खो जाया करता था, और चिंता मुझे दबा लेती थी, आच्छादित कर लेती थी, बोकोजू वहां नहीं होता था, तो मुझे उसे स्मरण करना पड़ता था। और स्मरण करते ही चिंता विदा हो जाती थी।’

इसे प्रयोग करो। बहुत सुंदर विधि है यह। अपने नाम का ही प्रयोग करो। जब भी तुम्हें गहन चिंता पकड़े तो अपना ही नाम पुकारो—और फिर खुद ही कहो कि हां, मैं मौजूद हूँ रहेगी; कम से कम एक क्षण के लिए तुम्हें बादलों के पार की एक झलक मिलेगी। और फिर वह झलक गहराई जा सकती है। तुम एक बार जान गए कि सजग होने पर चिंता नहीं रहती, विलीन हो जाती है, तो तुम स्वयं के संबंध में, अपनी आंतरिक व्यवस्था के संबंध में गहन बोध को उपलब्ध हो गए।

तंत्र-सूत्र, प्रक्षेपण 41



अकेलेपन से घबराहट ?

इसे भुलाने के लिये स्वयं को व्यस्त न करें

बस धैर्य से प्रतीक्षा करें, और ऊर्जा को बदलते हुए देखें

तुम अकेलापन अनुभव करते हो तो अकेलापन अनुभव करो—वही तुम्हारी स्थिति है। लेकिन जब तुम अकेलापन अनुभव करते हो तो तुम कुछ करने लगते हो; और तब तुम बंट गए। तब तुम्हारा एक हिस्सा अकेलापन अनुभव करता है और दूसरा हिस्सा उसे बदलने में लग जाता है। यह गलत है और बेतुका है। यह तो ऐसा ही है जैसे तुम अपने जूते के बंद पकड़कर अपने को ऊपर आकाश में उठाने की कोशिश करो। यह बात हीं बेतुकी है। तुम अकेले हो, तो क्या कर सकते हो? कोई दूसरा भी कुछ करने को नहीं है। तुम अकेले हो तो अकेले रहो। यहीं तुम्हारी नियति है, तुम इसी भाँति बने हो। और जब तुम इसे स्वीकार कर लेते हो तो क्या होता है? अगर तुम स्वीकार कर लो तो तुम्हारा विभाजन समाप्त हो जाएगा; तुम एक हो जाओगे, तुम अखंड हो जाओगे।

अस्वीकार करने वाले चित्त के लिए सब कुछ अस्वीकार है। लेकिन अगर तुम अपने अकेलेपन को, अपनी उदासी को, अपने दुख को स्वीकार कर सको तो तुम उसके पार जाने लगे। स्वीकार ही अतिक्रमण है। स्वीकार करके तुमने उदासी के पांव के नीचे से जमीन हटा दी; उदासी अब खड़ी नहीं रह सकती।

इसे प्रयोग करो। जो भी तुम्हारी चित्त-दशा हो उसे स्वीकार करो और उस समय की प्रतीक्षा करो जब वह खुद बदले। तुम उसे नहीं बदल रहे हो। तब तुम उस सौंदर्य को अनुभव करोगे जो आता ही तब है जब चित्त-दशा अपने आप बदलती है। तुम पाओगे कि यह ऐसा ही है जैसे सूरज सुबह उगता है और सांझ डूबता है; और उसके उगने-डूबने का सिलसिला चलता रहता है और उसके लिए कुछ नहीं किया जा सकता।

अगर तुम अपनी चित्त-दशा को अपने आप बदलते देख लो तो तुम उसके प्रति तटस्थ रह सकते हो, तुम उससे दूर, मीलों दूर रह सकते हो जैसे कि कहीं दूर यह सब घट रहा है। जैसे सूरज उगता और डूबता है, वैसे ही उदासी आती-जाती है, सुख आता-जाता है, पर तुम उसमें नहीं

हो। दुख-सुख अपने आप आते-जाते हैं; चित्त-दशा अपने आप आती-जाती हैं।

कुछ भी मत करो। तुमने बहुत कुछ कर-करके ही तो सब गड्ढ-मङ्ग कर दिया है। तुम करने में इतने कुशल हो कि तुमने अपने चारों ओर इतनी उलझन, इतना उपद्रव पैदा कर लिया है—न केवल अपने लिए, बल्कि दूसरों के लिए भी। कुछ भी मत करो; वह तुम्हारी अपने ऊपर बड़ी करुणा होगी। थोड़ी करुणा करो। कुछ मत करो, उलझे हुए मन के साथ कुछ करने की बजाय प्रतीक्षा करना बेहतर है, ताकि उलझन विसर्जित हो जाए। वह विसर्जित होगी; क्योंकि इस जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। सिर्फ गहन धैर्य की जरूरत है।

मैं तुम्हें एक कहानी कहूँ

दिन तप रहा था, ठीक दोपहरी थी। उन्हें प्यास लगी, तो उन्होंने अपने शिष्य आनंद से कहा: वापस जाओ। अभी हमने एक छोटा सा झरना पार किया था, वहां जाओ और मेरे लिए पानी ले आओ। आनंद वापस गया। लेकिन वह झरना बहुत छोटा था और अभी-अभी कुछ बैलगाड़ियां उससे गुजरी थीं। पानी हिल गया था और गंदा हो गया था। सारा कीचड़ ऊपर आ गया था और पानी पीने योग्य नहीं रहा था।

आनंद ने सोचा कि मैं लौट चलूँ और वह लौट गया। उसने बुद्ध से कहा कि वह पानी तो बिलकुल गंदा हो गया है और पीने योग्य नहीं है। आनंद ने कहा: मुझे आज्ञा दें कि मैं आगे जाऊँ। यहां से कुछ मीलों पर ही एक नदी है, मैं जाकर उससे पानी ले आता हूँ। कहा कि नहीं, उसी झरने पर वापस जाओ।

बुद्ध ने कहा तो आनंद को फिर वहीं वापस जाना पड़ा। लेकिन वह आधे मन से गया, क्योंकि वह जानता था कि मैं पानी नहीं ला पाऊंगा; सिर्फ समय गंवाना होगा। और उसे भी प्यास लग रही थी। लेकिन जब बुद्ध ने कहा तो उसे जाना पड़ा। वह फिर बुद्ध के पास लौटकर बोला:

आपने नाहक जिद की। वह पानी पीने योग्य नहीं है। लेकिन बुद्ध ने फिर कहा : तुम फिर वहीं जाओ। और बुद्ध के कहने पर आनंद को फिर वहीं जाना पड़ा। आनंद जब तीसरी बार झरने पर पहुंचा तो पानी बिलकुल साफ था। कीचड़ बैठ गया था, सूखे पते बह गए थे और पानी फिर शुद्ध का शुद्ध था। तब आनंद हंसा। वह पानी लेकर नाचता हुआ वापस आया। वह बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा और बोला : आपके सिखाने के ढंग अद्भुत हैं। आपने आज मुझे एक महान पाठ दिया—कि सिर्फ धैर्य चाहिए और कुछ भी हमेशा नहीं रहता है।

और बुद्ध की मूलभूत देशना यही है कि कुछ भी स्थायी नहीं है, सब कुछ बहा जा रहा है। फिर चिंता क्यों? उसी झरने पर वापस जाओ, अब तक सब कुछ बदल गया होगा। कुछ भी बिना बदले नहीं रहता है। सिर्फ धैर्य चाहिए। फिर-फिर वहीं जाओ। क्षणों की बात है और पते बह जाएंगे और कीचड़ बैठ जाएगा और फिर पानी स्वच्छ हो जाएगा।

और जब आनंद दूसरी बार झरने पर जा रहा था तो उसने बुद्ध से कहा कि आप जाने को कहते हैं तो मैं जाता हूँ किन क्या मैं वहां पानी

को स्वच्छ करने के लिए कुछ कर सकता हूँ करना, अन्यथा तुम पानी को और गंदा कर दोगे। और झरने में उतरना भी मत; बाहर ही रहना। किनारे बैठकर प्रतीक्षा करना। तुम झरने में उतरकर उपद्रव ही पैदा करोगे। झरना अपने आप ही बहता है, उसे बहने देना।

कुछ भी स्थायी नहीं है। जीवन एक प्रवाह है। हेराकलाइट्स ने कहा है कि तुम एक ही नदी में दो बार नहीं उतर सकते; एक ही नदी में दो बार उतरना असंभव है। क्योंकि नदी तो बह गई; उसका सब कुछ बदल गया। और यही नहीं कि नदी बह गई, तुम भी इस बीच बह गए हो, तुम भी बदल गए हो। तुम भी एक नदी हो।

हर चीज की क्षणभंगुरता को देखो। जल्दी मत करो। कुछ भी करने की चेष्टा मत करो। बस प्रतीक्षा करो। समग्रतः निष्क्रिय होकर प्रतीक्षा करो। और तुम अगर प्रतीक्षा कर सके तो रूपांतरण होगा। प्रतीक्षा ही रूपांतरण बन जाएगी।

तंत्र-सूत्र, प्रवचन 38

अकेलेपन को रथ बना लें, उस पर सवार हो जायें

अकेला होना मनुष्य का स्वभाव है। अकेला होना मनुष्य की नियति है। और जब तक अकेले होने को स्वीकार न करोगे, तब तक बेचैनी रहेगी। लाख उपाय करो कि अकेलापन मिट जाए, नहीं मिटेगा, नहीं मिटेगा। क्योंकि अकेलापन तुम्हारे भीतर की आंतरिक अवस्था है, तुम्हारा स्वभाव है। ऊपर-ऊपर होता, निकाल कर अलग कर देते।

अकेलापन सांयोगिक नहीं है; अलग किया ही नहीं जा सकता। अगर तुम्हारा अकेलापन तुमसे अलग हो जाए, उसी दिन तुम्हारी आत्मा खो जाएगी। आत्मा का होने का ढंग ही अकेला होना है।

संन्यस्त की यही परिभाषा है कि जिसने यह जान लिया कि यह मेरा स्वभाव है, मिटाने में व्यर्थ समय न खोऊँ; और जिसने अपने एकाकीपन को भोगना शुरू कर दिया—रस ले-लेकर, जो अपने एकाकीपन को दुश्मन की तरह नहीं देखता, बल्कि एकाकीपन को ही जिसने अपनी शरण बना ली; संसार की धूप से, बेचैनी से बचने के लिए सदा अपने एकाकीपन में चला गया;

जब भी थका बाहर, भीतर डूब गया; जब भी बाहर उलझा, उपद्रव हुआ, तब भीतर डूब गया; जब पाया कि बाहर जीवन गंदा हुआ जाता है, भीतर स्नान कर लिया एकाकीपन में, फिर ताजा हो गया।

ध्यान अर्थात् एकाकीपन में रमने की कला। ध्यान का अर्थ है: इन संस्कारों को जो बचपन से पढ़ गए हैं, यह दूसरे का सहारा खोजने की जो गलत आदत पड़ गई है—ध्यान का अर्थ है, इस आदत से ऊपर उठ जाना, और एक नये सूत्रपात का उद्घाटन करता: ‘मैं अकेला हो सकता हूँ’

अकेलेपन से लड़ कर कभी कोई नहीं जीता। जीतनेवाले अकेलेपन पर सवार हो गए; उन्होंने अकेलेपन का धोड़ा बना लिया; अकेलेपन को रथ बना लिया, उस पर सवार हो गए। और तब अकेलापन कैवल्य तक पहुंचा देता है; उस परम दशा तक, जिसको भगवान कहें, परमात्मा कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें—उस परम दशा तक पहुंचा देता है। अकेले ही तुम पहुंचोगे।

भक्ति-सूत्र, प्रवचन 18

अगर तुम मात्र साक्षी के रूप में उपस्थित रह सके, अगर तुमने कुछ बदलने का प्रयत्न नहीं किया और भावावेगों को अपनी राह जाने दिया, तो तुम किसी भी भाव का विसर्जन कर सकते हो। तुम किसी भी भाव का निरसन कर सकते हो।

दुख, बेचैनी, चिंता, क्रोध...

जो भी भाव हो, उसमें ठहर जायें

उसें विसर्जित होते, और अपने केंद्र को प्रकट होता देखें

जब तुम दुखी हो तो एक प्रयोग करो : दुखी होओ; दुख से लड़ो मत। यह प्रयोग करो; यह अदभुत विधि है। जब दुख आए और तुम दुखी हो जाओ, तुम्हें पीड़ा अनुभव हो; तो तुम अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लो और दुखी हो जाओ। अब और क्या कर सकते हो? तुम दुखी हो, तो तुम दुखी हो। अब पूरी तरह दुखी हो जाओ। और अचानक तुम्हें दुख का बोध होगा।

लेकिन अगर तुम दुख को बदलने की कोशिश करोगे तो तुम्हें कभी दुख का बोध नहीं होगा। क्योंकि तब तुम्हारी चेतना, तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारा प्रयत्न, सब दुख को बदलने की दिशा में नियोजित हो जाएगा। तब तुम सोचने लगोगे कि यह दुख कैसे आया और इसे बदलने के लिए क्या किया जाए। और तुम एक बहुत सुंदर अनुभव से वंचित हो रहे हो, दुख को सीधे देखने से वंचित हो रहे हो। अब तुम दुख के कारणों पर विचार कर रहे हो, उसके परिणाम पर विचार कर रहे हो, उसे भूलने के उपाय खोज रहे हो, उससे छूटने के तरीके निकालने में लगे हो। और तुम खुद दुख को चूक रहे हो जो कि वहां मौजूद है और जिसे सीधे देख लेना मुक्तिदायी हो सकता है।

कुछ मत करो। दुख कैसे पैदा हुआ, इसका विश्लेषण मत करो। और इसकी भी फिक्र मत करो कि इसके क्या-क्या परिणाम होंगे। परिणाम जब आएंगे तब उन्हें देख लेना। जल्दी क्या है? अभी दुखी होओ, सिर्फ दुखी होओ। और उसे बदलने की चेष्टा मत करो।

इस तरह प्रयोग करो : देखो कि कितने मिनट तक तुम दुखी रह सकते हो। तब तुम्हें पूरी चीज पर हंसी आएगी; पूरी चीज मूढ़तापूर्ण मालूम पड़ेगी। क्योंकि अगर तुम समग्रतः दुखी हो जाओ तो अचानक तुम्हारा केंद्र दुख के पार हो जाएगा। वह केंद्र कभी दुखी नहीं हो सकता; यह असंभव है। अगर तुम दुख के साथ बने रहे तो दुख पृष्ठभूमि बन जाता है और तुम्हारा केंद्र, जो कभी दुखी नहीं हो सकता, अचानक उभर

आता है। और तब तुम दुखी हो और दुखी नहीं भी हो—असमता में समभाव। अब तुम दुख को दुख से विसर्जित कर रहे हो।

दुख ऐसे ही विलीन हो जाएगा जैसे आकाश से बादल विलीन हो जाते हैं और आकाश खुल जाता है। तब तुम हंसोगे। और तुमने कुछ किया भी नहीं। और तुम कुछ कर भी नहीं सकते हो।

तुम जो भी करोगे उससे उलझन बढ़ेगी, दुख बढ़ेगा।

कुछ मत करो। अंतस बहुत गहरा है। कितनी बार तुमने कोशिश नहीं की कि दुख रुके, कि उदासी रुके, कि यह रुके, वह रुके; और कुछ भी नहीं रुका। अब यह प्रयोग करो कि कुछ मत करो और दुख को उसकी समग्रता में होने दो। दुख को उसकी पूरी त्वरा में होने दो और तुम निष्क्रिय बने रहो। तुम सिर्फ दुख के साथ रहो और देखो कि क्या होता है।

जीवन परिवर्तन है। हिमालय भी बदल रहा है। तुम्हारा दुख अचल नहीं रह सकता; वह अपने आप ही बदलेगा। और तुम दुख को बदलते हुए देखोगे, उसे विलीन होते हुए देखोगे, उसे विदा होते हुए देखोगे, और तब तुम निर्भार महसूस करोगे। और तुमने कुछ भी तो नहीं किया।

एक बार तुम्हें कुंजी हाथ लग जाए तो तुम किसी भी चीज का विसर्जन उसी चीज के द्वारा कर सकते हो। और कुंजी यह है कि बिना कुछ किए शांतिपूर्वक उसके साथ रहना। क्रोध है तो क्रोध ही हो जाओ; कुछ करो मत। अगर तुम इतना ही कर सके—यह न करना कर सके—अगर तुम मात्र साक्षी के रूप में उपस्थित रह सके, अगर तुमने कुछ बदलने का प्रयत्न नहीं किया और भावावेगों को अपनी राह जाने दिया, तो तुम किसी भी भाव का विसर्जन कर सकते हो। तुम किसी भी भाव का निरसन कर सकते हो।

बंद दरवाजों के पीछे जी घबराये तो **आकाश ही बन जायें**

सीमित रथान पर जी घबराना बहुत से लोगों की समस्या होती है—इसे व्हाँट्रोफोबिया कहते हैं। लॉकडाउन के दौरान बहुत से लोगों की शिकायत रही है कि घर में बंद हो जाने के कारण उन्हें एक घबराहट का सामना करना पड़ रहा है जैसे भीतर कोई घुटन हो। डॉक्टर बताते हैं कि इस दौरान इसी कारण से बहुत से लोगों ने बताया है कि उन्हें ठीक से सांस न ले पाने की समस्या भी हुई है।

ओशो द्वारा दी गयी यह छोटी सी विधि व्हाँट्रोफोबिया से निपटने में सहयोगी हो सकती है, साथ ही दे सकती है मन के पार का एक सुंदर अनुभव।

पहला चरण : बिस्तर पर लेट जाओ, आंखें बंद कर लो और महसूस करो कि तुम्हारे पांव कहां हैं। अगर तुम छह फीट लंबे हो या पांच फीट हो, बस यह महसूस करो कि तुम्हारे पांव कहां हैं, उनकी सीमा क्या है। और फिर भाव करो कि मेरी लंबाई छह इंच बढ़ गई है, मैं छह इंच और लंबा हो गया हूँ में महसूस करो कि मेरी लंबाई छह इंच बढ़ गई है।

फिर दूसरा चरण : अपने सिर को अनुभव करो कि वह कहां है, भीतर-भीतर अनुभव करो कि वह कहां है। और फिर भाव करो कि सिर भी छह इंच बड़ा हो गया है।

अगर तुम इतना कर सके तो बात बहुत आसान हो जाएगी। फिर उसे और भी बड़ा करो, भाव करो कि तुम बारह फीट लंबे हो गए हो और तुम पूरे कमरे में फैल गए हो। अब तुम अपनी कल्पना में दीवारों को छू रहे हो; तुमने पूरे कमरे को भर दिया है। और तब **क्रमशः** भाव करो कि तुम इतने फैल गए हो कि पूरा मकान तुम्हारे अंदर आ गया है। और एक बार तुमने भाव करना जान लिया तो यह बहुत आसान है। अगर तुम छह इंच बढ़ सकते हो तो कितना भी बढ़ सकते हो। अगर तुम भाव कर सके कि मैं पांच फीट नहीं, छह फीट लंबा हूँ

पहले लंबे होने का भाव करो और फिर भाव करो कि मैं इतना बड़ा हो गया हूँ को भर दिया है। यह केवल कल्पना का प्रशिक्षण है। फिर यह भाव करो कि मैंने फैल कर पूरे घर को घेर लिया है; फिर भाव करो कि मैं आकाश हो गया हूँ

और जिस क्षण तुम्हें यह अनुभव होता है, मन विलीन होने लगता है। क्योंकि मन बहुत क्षुद्रता में जीता है। आकाश जैसे विस्तार में मन नहीं टिक सकता; वह खो जाता है। इस महाविस्तार में मन असंभव है। मन क्षुद्र और सीमित में ही हो सकता है; इतने विराट आकाश में मन को जीने के लिए जगह ही नहीं मिलती है। यह विधि सुंदरतम विधियों में से एक है। मन अचानक बिखर जाता है और आकाश प्रकट हो जाता है।

तंत्र-सूत्र, प्रवचन 49



क्या आप जानते हैं कि दिन भर टीवी और इंटरनेट प त्रासदी के समाचार आपमें ऐसे रासायनिक परिवर्तन ला सकते हैं जो आपके शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करें?

ओशो यहां एक ऐसी विधि दे रहे हैं जिसमें कई छोटे-छोटे प्रयोग हैं जो हममें भिन्न प्रकार के रासायनिक परिवर्तन लाकर हमें हर तल पर अधिक स्वस्थ कर सकते हैं।

हर तल पर स्वास्थ्य के लिये

**कुछ छोटे-छोटे सरल से प्रयोगों द्वारा
अपने शरीर में कुछ नये
रसायन पैदा करें**

मैंने एक प्रयोग के बारे में सुना है। एक डाक्टर कुछ लोगों पर प्रयोग कर रहा था कि क्या भावदशा से शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते हैं। अब उसने निष्कर्ष निकाला है कि भावदशा से शरीर में तत्काल रासायनिक परिवर्तन होते हैं।

उसने बारह लोगों के एक समूह पर प्रयोग किया। उसने प्रयोग के आरंभ में उन सबकी पेशाब की जांच की; और सबकी पेशाब साधारण, सामान्य पाई गई। फिर हर व्यक्ति को एक विशेष भावदशा के प्रभाव में रखा गया। एक को क्रोध, हिंसा, हत्या, मार-पीट से भरी फ़िल्म दिखाई गई। तीस मिनट तक उसे भयावह फ़िल्म दिखाई गई। यह मात्र फ़िल्म ही थी, लेकिन वह व्यक्ति उस भावदशा में रहा। दूसरे को एक हंसी-खुशी की, प्रसन्नता की फ़िल्म दिखाई गई। वह आनंदित रहा। और इसी तरह बारह लोगों पर प्रयोग किया गया।

फिर प्रयोग के बाद उनकी पेशाब की जांच की गई; और अब सबकी पेशाब अलग थी। शरीर में रासायनिक परिवर्तन हुए थे। जो हिंसा और भय की भावदशा में रहा वह अब बुझा-बुझा, बीमार था; और जो हंसी-खुशी, प्रसन्नता की भावदशा में रहा वह अब स्वस्थ, प्रफुल्ल था। उसकी पेशाब अलग थी, उसके शरीर की रासायनिक व्यवस्था अलग थी।



तुम्हें बोध नहीं है कि तुम अपने साथ क्या कर रहे हो। जब तुम कोई खून-खराबे की फ़िल्म देखने जाते हो, तो तुम नहीं जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो; तुम अपने शरीर की रासायनिक व्यवस्था बदल रहे हो। तुम अपनी हत्या कर रहे हो। तुम उत्तेजित हो जाओगे; तुम भयभीत हो जाओगे; तुम तनाव से भर जाओगे। और इस भाँति तुम्हारे शरीर का रसायन बदल रहा है।

अगर तुम सारे जगत को जीवन और प्रकाश से भरा अनुभव करते हो, तो तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है। और यह एक चेन रिएक्शन है, इस बदलाहट की एक शृंखला बन जाती है। जब तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है और तुम जगत को देखते हो, तो वही जगत ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है। और जब वह ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है, तो तुम्हारे शरीर की रासायनिक व्यवस्था और भी बदलती है। ऐसे एक शृंखला निर्मित हो जाती है। तुम भिन्न ही जगत में रहने लगोगे; क्योंकि अब तुम ही भिन्न व्यक्ति हो जाओगे।

अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लो, कमरे में अंधेरा कर लो, और फिर एक छोटी मोमबत्ती जलाओ। और उस मोमबत्ती के पास प्रेमपूर्ण

मुद्रा में, बल्कि प्रार्थनापूर्ण भावदशा में बैठो। और ज्योति से प्रार्थना करो: 'अपने रहस्य को मुझ पर प्रकट करो।' स्नान कर लो, अपनी आँखों पर ठंडा पानी छिड़क लो और फिर ज्योति के सामने अत्यंत प्रार्थनापूर्ण भावदशा में होकर बैठो। ज्योति को देखो और शेष सब चीजें भूल जाओ। सिर्फ ज्योति को देखो। ज्योति को देखते रहो।

पांच मिनट बाद तुम्हें अनुभव होगा कि ज्योति में बहुत चीजें बदल रही हैं। लेकिन स्मरण रहे, यह बदलाहट ज्योति में नहीं हो रही है; दरअसल तुम्हारी दृष्टि बदल रही है।

प्रेमपूर्ण भावदशा में, सारे जगत को भूलकर, समग्र एकाग्रता के साथ, भावपूर्ण हृदय के साथ ज्योति को देखते रहो। तुम्हें ज्योति के चारों ओर नए रंग, नई छाएं दिखाइ देंगी, जो पहले कभी नहीं दिखाइ दी थीं। वे रंग, वे छाएं सब वहां मौजूद हैं; पूरा इंद्रधनुष वहां उपस्थित है। जहां-जहां भी प्रकाश है, वहां-वहां इंद्रधनुष है; क्योंकि प्रकाश बहुरंगी है, उसमें सब रंग हैं। लेकिन उन्हें देखने के लिए सूक्ष्म संवेदना की जरूरत है। उसे अनुभव करो और देखते रहो। यदि आंसू भी बहने लगें, तो भी देखते रहो। वे आंसू तुम्हारी आँखों को निखार देंगे, ज्यादा ताजा बना जाएंगे।

कभी-कभी तुम्हें प्रतीत होगा कि मोमबत्ती या ज्योति बहुत रहस्यपूर्ण हो गई है। तुम्हें लगेगा कि यह वही साधारण मोमबत्ती नहीं है जो मैं अपने साथ लाया था; उसने एक नई आभा, एक सूक्ष्म दिव्यता, एक भगवत्ता प्राप्त कर ली है। इस प्रयोग को जारी रखो।

कई अन्य चीजों के साथ भी तुम इसे कर सकते हो। मेरे एक मित्र मुझे कह रहे थे कि वे पांच-छह मित्र पत्थरों के साथ एक प्रयोग कर रहे थे। मैंने उन्हें कहा था कि कैसे प्रयोग करना, और वे लौटकर मुझे पूरी बात कह रहे थे। वे एकांत में एक नदी के किनारे पत्थरों के साथ प्रयोग कर रहे थे। वे उन्हें फील करने की कोशिश कर रहे थे—हाथों से छूकर, चेहरे से लगाकर, जीभ से चखकर, नाक से सूंधकर—वे उन पत्थरों को हर तरह से फील करने की कोशिश कर रहे थे। साधारण से पत्थर, जो उन्हें नदी किनारे मिल गए थे।

उन्होंने एक धंटे तक यह प्रयोग किया—हर व्यक्ति ने एक पत्थर के साथ। और मेरे मित्र मुझे कह रहे थे कि एक बहुत अदभुत घटना घटी। हर किसी ने कहा: 'क्या मैं यह पत्थर अपने पास रख सकता हूँ इसके साथ प्रेम में पड़ गया हूँ।'

एक साधारण सा पत्थर! अगर तुम सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उससे संबंध बनाते हो तो तुम प्रेम में पड़ जाओगे।

सर्वत्र प्रकाश है; अनेक-अनेक रूपों और रंगों में प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखो। सर्वत्र प्रकाश है, क्योंकि सारी सृष्टि प्रकाश की आधारशिला पर खड़ी है। एक पते को देखो, एक फूल को देखो या एक पत्थर को देखो, और देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि उससे प्रकाश की किरणें निकल रही हैं। बस, धैर्य से प्रतीक्षा करो। जल्दबाजी मत करो, क्योंकि जल्दबाजी में कुछ भी प्रकट नहीं होता है। तुम जब जल्दी में होते हो तो तुम जड़ हो जाते हो। किसी भी चीज के साथ धीरज से प्रतीक्षा करो, और तुम्हें एक अदभुत तथ्य से साक्षात्कार होगा जो सदा से मौजूद था, लेकिन जिसके प्रति तुम सजग नहीं थे, सावचेत नहीं थे।

और जैसे ही तुम्हें इस शाश्वत अस्तित्व की उपस्थिति अनुभव होगी वैसे ही तुम्हारा चित्त बिलकुल मौन और शांत हो जाएगा। तुम तब उसके एक अंश भर होगे; किसी अदभुत संगीत में एक स्वर भर! फिर कोई चिंता नहीं है, फिर कोई तनाव नहीं है। बूँद समुद्र में गिर गई, खो गई।

लेकिन आरंभ में एक बड़ी कल्पना की जरूरत होगी। और अगर तुम संवेदनशीलता बढ़ाने के अन्य प्रयोग भी करते हो, तो वह सहयोगी होगा। तुम कई तरह के प्रयोग कर सकते हो। किसी का हाथ अपने हाथ में ले लो, आँखें बंद कर लो और दूसरे के भीतर के जीवन को महसूस करो; उसे महसूस करो और उसे अपनी ओर बहने दो, गति करने दो। फिर अपने जीवन को महसूस करो, और उसे दूसरे की ओर प्रवाहित होने दो। किसी वृक्ष के निकट बैठ जाओ और उसकी छाल को छुओ, स्पर्श करो। अपनी आँखें बंद कर लो और वृक्ष में उठते जीवन-तत्व को अनुभव करो। और तुम्हें तुरंत बदलाहट अनुभव होगी।

तंत्र-सूत्र, प्रवचन 47



निराशा से बाहर आने के लिये

बस एक छोटा सा निर्णय काफी है



मैं यह क्या देख रहा हूँ

और क्या तुम्हें जात नहीं है कि जब आंखें निराश होती हैं, तब हृदय की वह अग्नि बुझ जाती है और वे सारी अभीप्साएं सो जाती हैं जिनके कारण मनुष्य मनुष्य है।

निराशा पाप है, क्योंकि जीवन उसकी धारा में निश्चय ही ऊर्ध्वगमन खो देता है। निराशा पाप ही नहीं, आत्मघात भी है; क्योंकि जो श्रेष्ठतर जीवन को पाने में संलग्न नहीं है, उसके चरण अनायास ही मृत्यु की ओर बढ़ जाते हैं।

यह शाश्वत नियम है कि जो ऊपर नहीं उठता, वह नीचे गिर जाता है; और जो आगे नहीं बढ़ता, वह पीछे धकेल दिया जाता है।

मैं जब किसी को पतन में जाते देखता हूँ कि उसने पर्वत-शिखरों की ओर उठना बंद कर दिया होगा। पतन की प्रक्रिया विधेयात्मक नहीं है। घाटियों में जाना, पर्वतों पर न जाने का ही दूसरा पहलू है। वह उसकी ही निषेध छाया है।

और जब तुम्हारी आंखों में मैं निराशा देखता हूँ

कि मेरा हृदय प्रेम, पीड़ा और करुणा से भर जाए, क्योंकि निराशा मृत्यु की घाटियों में उतरने का प्रारंभ है।

आशा सूर्यमुखी के फूलों की भाँति सूर्य की ओर देखती है। और निराशा? वह अंधकार से एक हो जाती है। जो निराश हो जाता है, वह अपनी अंतर्निहित विराट शक्ति के प्रति सो जाता है, और उसे विस्मृत कर देता है जो वह है, और जो वह हो सकता है। बीज जैसे भूल जाए कि उसे क्या होना है और मिट्टी के साथ ही एक होकर पड़ा रह जाए, ऐसा ही वह मनुष्य है जो निराशा में डूब जाता है।

और आज तो सभी निराशा में डूबे हुए हैं!

नीसे ने कहा है, परमात्मा मर गया है। यह समाचार उतना दुखद नहीं है जितना कि आशा का मर जाना। क्योंकि आशा हो तो परमात्मा को पा लेना कठिन नहीं है और यदि आशा न हो तो परमात्मा के होने से कोई भेद नहीं पड़ता। आशा का आकर्षण ही मनुष्य को अज्ञात की यात्रा

पर ले जाता है। आशा ही प्रेरणा है जो उसकी सोई शक्तियों को जगाती है और उसकी निष्क्रिय चेतना को सक्रिय करती है।

क्या मैं कहूँ

और यह भी कि आशा ही समस्त जीवन-आरोहण का मूल उत्स और प्राण है?

पर आशा कहाँ है? मैं तुम्हारे प्राणों में खोजता हूँ
राख के सिवाय और कुछ भी नहीं मिलता।

आशा के अंगारे न हों तो तुम जीओगे कैसे? निश्चय ही तुम्हारा यह जीवन इतना बुझा हुआ है कि मैं इसे जीवन भी कहने में असमर्थ हूँ।

जीए ही नहीं। तुम्हारा जन्म तो जरूर हुआ था, लेकिन वह जीवन तक नहीं पहुँच सका। जन्म ही जीवन नहीं है। जन्म मिलता है, जीवन पाना होता है। इसलिए जन्म मृत्यु में ही छीन भी लिया जाता है, लेकिन जीवन को कोई भी मृत्यु नहीं छीन पाती है। जीवन जन्म नहीं है और इसलिए जीवन मृत्यु भी नहीं है। जीवन जन्म के भी पूर्व है और मृत्यु के भी अतीत है। जो उसे जानता है वही केवल भयों और दुखों के ऊपर उठ पाता है।

किंतु जो निराशा से घिरे हैं, वे उसे कैसे जानेगे? वे तो जन्म और मृत्यु के तनाव में ही समाज हो जाते हैं।

जीवन एक संभावना है और उसे सत्य में परिणत करने के लिए साधना चाहिए। निराशा में साधना का जन्म नहीं होता, क्योंकि निराशा तो बांझ है और उसमें कभी भी किसी का जन्म नहीं होता है। इसलिए मैंने कहा कि निराशा आत्मघाती है, क्योंकि उससे किसी भी भाँति की सृजनात्मक शक्ति का आविर्भाव नहीं होता है।

मैं कहता हूँ

हाथों से ओढ़े बैठे हो। उसे फेंकने के लिए और कुछ भी नहीं करना है सिवाय इसके कि तुम उसे फेंकने को राजी हो जाओ। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई उसके लिए जिम्मेवार नहीं है।

मनुष्य जैसा भाव करता है, वैसा ही हो जाता है। उसके ही भाव उसका सृजन करते हैं। वही अपना भाग्य-विधाता है। विचार—विचार—विचार, और उनका सतत आवर्तन ही अंतः वस्तुओं और स्थितियों में घनीभूत हो जाता है।

अपने ही द्वारा ओढ़े भावों और विचारों को उतार कर अलग कर देना कठिन नहीं होता है। वस्त्रों को उतारने में भी जितनी कठिनता होती है उतनी भी उन्हें उतारने में नहीं होती है, क्योंकि वे तो हैं भी नहीं। सिवाय

तुम्हारे ख्याल के उनकी कहीं भी कोई सत्ता नहीं है। हम अपने ही भावों में अपने ही हाथों से कैद हो जाते हैं, अन्यथा वह जो हमारे भीतर है, सदा, सदैव ही स्वतंत्र है।

क्या निराशा से बड़ी और कोई कैद है? नहीं! क्योंकि पथरों की दीवारें जो नहीं कर सकतीं, वह निराशा करती है। दीवारों को तोड़ना संभव है, लेकिन निराशा तो मुक्त होने की आकांक्षा को ही खो देती है। निराशा से मजबूत जंजीरें भी नहीं हैं, क्योंकि लोहे की जंजीरें तो मात्र शरीर को ही बांधती हैं, निराशा तो आत्मा को भी बांध लेती है।

निराशा की इन जंजीरों को तोड़ दो! उन्हें तोड़ा जा सकता है, इसीलिए ही मैं तोड़ने को कह रहा हूँ आ मात्र है। उन्हें तोड़ने के संकल्प मात्र से ही वे टूट जाएंगी। जैसे दैये के जलते ही अंधकार टूट जाता है, वैसे ही संकल्प के जागते ही स्वप्न टूट जाते हैं।

और फिर निराशा के खंडित होते ही जो आलोक चेतना को धेर लेता है, उसका ही नाम आशा है।

निराशा स्वयं आरोपित दशा है। आशा स्वभाव है, स्वरूप है।

निराशा मानसिक आवरण है, आशा आत्मिक आविर्भाव।

मैं कह रहा हूँ

तो जीवन-विकास की ओर सतत गति और आरोहण की कोई संभावना न रह जाए।

अंधेरा कभी इतना धना नहीं होता और न ही परिस्थितियां इतनी प्रतिकूल होती हैं कि वे प्रकाश के आगमन में बाधा बन सकें। तुम्हारी निराशा के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। वस्तुतः तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

उसे बहुत मूल्य कभी मत दो जो आज है और कल नहीं होगा। जिसमें पल-पल परिवर्तन है उसका मूल्य ही क्या? परिस्थितियों का प्रवाह तो नदी की भाँति है। उसे देखो, उस पर ध्यान दो, जो नदी की धार में भी अडिग चट्टान की भाँति स्थिर है। वह कौन है? वह तुम्हारी चेतना है, वह तुम्हारी आत्मा है, वह तुम अपने वास्तविक स्वरूप में स्वयं हो। सब बदल जाता है, बस वही अपरिवर्तित है। उस ध्रुव बिंदु को पकड़ो और उस पर ठहरो।

लेकिन तुम तो आंधियों के साथ कांप रहे हो और लहरों के साथ थरथरा रहे हो। क्या वह शांत और अडिग चट्टान तुम्हें नहीं दिखाई पड़ती है जिस पर तुम खड़े हो और जो तुम हो? उसकी स्मृति को लाओ। उसकी ओर आंखें उठते ही निराशा आशा में परिणत हो जाती है और अंधकार आलोक बन जाता है।

मैं कहता आंखन देखी, प्रवचन 23



दुनिया में बहुत सारे लोग हैं जो जीवन के सौंदर्य को अनुभव कर पाने से चूक रहे हैं क्योंकि वे हमेशा किसी महान घटना के घटने का इंतजार करते रहते हैं। इस इंतजार में यह घटना कभी नहीं घटने वाली, यह घटना हमेशा छोटी-छोटी चीजों में घटती है : खाते हुए, नाश्ता करते हुए, चलते हुए, स्नान लेते हुए, मित्र से बातें करते हुए, अकेले बैठे आकाश को निहारते हुए या अपने बिस्तर पर बस पड़े हुए, कुछ ना करते हुए। ये छोटी-छोटी चीजें हैं जिनसे जीवन बना है। जीवन इनसे निर्मित हुआ है।

इसलिए हर चीज को आनंदपूर्वक करो और तब सब कुछ प्रार्थना बन जाता है। जो भी करो उसे उत्साह के साथ करो। उत्साह शब्द बड़ा सुंदर है। इसका बुनियादी अर्थ है परमात्मा का दिया हुआ। जब तुम कुछ भी गहन उत्साह से करते हों, परमात्मा तुम्हारे भीतर होता है। उत्साह शब्द का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो परमात्मा से भरा है। इसलिए जीवन में थोड़ा और उत्साह लाओ, और भय व दूसरी चीजें स्वतः समाप्त हो जाएँगी।

कभी भी नकारात्मकता की चिंता मत लो। तुम दीया जलाते हो और अंधेरा स्वतः चला जाता है। अंधेरे से लड़ने का प्रयास मत करो। ऐसा किया नहीं जा सकता क्योंकि अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं है। उसके साथ तुम लड़ कैसे सकते हो? बस दीया जलाओ और अंधेरा चला जाता है। इसलिए अंधेरे के बारे में भूल जाओ, भय के बारे में भूल जाओ। उन सभी नकारात्मक बातों को भूल जाओ जो सामान्यतया मानव मन के पीछे पड़ी रहती हैं। बस उत्साह का जरा सा दीया जलाओ।

आज का दिन उत्साह से जीने का निर्णय ले लो

भय वगैरह की चिंता मत करो

सुबह-सुबह पहली बात, गहन उत्साह के साथ जागो, इस निर्णय के साथ कि आज तुम गहन आनंद के साथ जीओगे और गहन आनंद के साथ जीना शुरू करो : अपना नाश्ता करो, पर उसे ऐसे खाओ जैसे कि तुम स्वयं परमात्मा को खा रहे हो। यह प्रसाद बन जाए। अपना स्नान लो, लेकिन परमात्मा तुम्हारे भीतर है; तुम परमात्मा को स्नान करवा रहे हो। तब तुम्हारा छोटा सा बाथरूम मंदिर बन जाता है और तुम्हारे ऊपर गिरता पानी दीक्षा-स्नान हो जाता है।

तो हर सुबह महान निर्णय के साथ जागो—एक निश्चय, एक स्पष्टता, अपने से एक बादा कि आज का दिन बहुत सुंदर होने वाला है और तुम उसे पूरी तरह से जीने वाले हो। और प्रत्येक रात्रि जब तुम बिस्तर पर जाओ, फिर से याद करो कि आज कितनी सारी बातें सुंदर हुई। बस उनका पुनः स्मरण उन्हें अगले दिन फिर से ले आएगा। बस याद करो और उन सुंदर क्षणों को याद करते हुए, जो आज हुए, सो जाओ। तुम्हारे सपने अधिक सुंदर होंगे। वे तुम्हारे उत्साह को लिए होंगे, और तुम जीवन के सौंदर्य को जीना शुरू कर दोगे, नई ऊर्जा के साथ।

ए रोज़ इज़ ए रोज़ इज़ ए रोज़

रोग के कारण ही स्वास्थ्य सुखद है

तुम रोगों के द्वार बंद किये जाते हो,
और असाध्य रोग पैदा कर लेते हो

हैराक्लाइट्स कहते हैं : रोग के कारण ही स्वास्थ्य सुखद है। कई बार बीमार पड़ जाना भी अच्छा है। उसमें कुछ बुरा नहीं है। एक स्वस्थ व्यक्ति कभी-कभार बीमार पड़ेगा ही। लेकिन तुम्हारी अलग ही धारणायें हैं। तुम्हें लगता है कि स्वस्थ व्यक्ति को कभी बीमार नहीं पड़ना चाहिये—यह निपट मूर्खता की बात है। यह संभव नहीं है। केवल एक मृत व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ सकता। स्वस्थ व्यक्ति को तो कभी-कभी बीमार पड़ता है, रोग के कारण ही वह फिर से स्वास्थ्य को उपलब्ध होता है, उसका स्वास्थ्य ताजा होता है। क्या तुमने कभी ध्यान नहीं दिया कि जब तुम बुखार के बाद ठीक हो रहे होते हो तो तुममें कैसी ताजगी होती है, जैसे पूरा शरीर पुनरुज्जीवित हो उठा हो ?

लेकिन तार्किक मन कहता है कि स्वास्थ्य अच्छा है, और रोग बुरा है। तार्किक मन कहता है कि रोग से बचना होगा, कि यदि रोग से पूरी तरह बचा जा सके तो सबसे बढ़िया। यही प्रयास तो विज्ञान पूरी दुनिया में कर रहा है कि रोग को पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाये। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ

संसार में उतने नये रोग पैदा होते चले जायेंगे।

संसार में आज इतने नये रोग हैं जो पहले कभी नहीं थे। क्योंकि तुम रोग का एक द्वार बंद कर देते हो, प्रकृति को तुरंत दू खोलना पड़ता है—क्योंकि रोग के बिना स्वास्थ्य संभव नहीं है; तुम मूर्खता कर रहे हो। तुमने मलेरिया मिटा दिया, तुमने हैजा मिटा दिया—तो अब कहीं और दो नये द्वार प्रकृति को खोलने पड़ेंगे। और विज्ञान तो सभी द्वार बंद करने पर तुला है—तो अधिक खतरनाक रोग खड़े होंगे, क्योंकि यदि तुमने रोगों के दस लाख द्वार बंद कर दिये तो प्रकृति को ऐसा खतरनाक द्वार खोलना होगा जो उन दस लाख द्वारों जितना शक्तिशाली हो। फिर कैंसर आ जाता है। तुम रोग समाप्त करते हो और असाध्य रोग पैदा कर लेते हो। कैंसर एक नयी घटना है, वह संसार में पहले कभी नहीं था—और वह असाध्य है। वह असाध्य क्यों है ?

क्योंकि प्रकृति अपने नियम को बचा रही है। बिना रोगों के मनुष्य कभी भी स्वस्थ नहीं होगा।

तुम किसी आदिम समाज में जाओ जहां न कोई मैडिकल साइंस है, न कोई डॉक्टर है, न इलाज की आधुनिक सुविधायें हैं। वे लोग कम बीमार और अधिक स्वस्थ होंगे। वहां रोग तो आम होंगे, लेकिन असाध्य नहीं होंगे। वे अपने लोगों को कोई खास दवाइयां नहीं देते बस रोगी को सांत्वना देने के लिये थोड़ा झाड़-फूक कर लेते हैं ताकि रोगी बीमारी का समय किसी तरह काट ले—क्योंकि कुछ समय में प्रकृति अपने आप ही स्वस्थ कर देती है। कहते हैं न जुखाम की की दवा लो तो वह एक हफ्ते में ठीक हो जाता है, और अगर कुछ भी न लो तो सात दिन में ठीक हो जाता है।

प्रकृति स्वयं स्वस्थ कर देती है। बस उसे थोड़ा समय देना होता है, थोड़ा धीरज रखना होता है। अंग्रेजी में रोगी के लिये जो शब्द है—पेशेंट— वह बड़ा प्यारा शब्द है। पेशेंट का अर्थ होता है जो धीरज रख रहा है। वास्तव में डॉक्टर का काम ही यह होता है कि वह मरीज को धीरज रखने में सहयोगी हो। वह मरीज को दवा दे देता है, मरीज को लगता है कि मैं कुछ ले रहा हूँ ठीक हो जाऊंगा। वास्तव में डॉक्टर मरीज को प्रतीक्षा करने में मदद कर रहा है—प्रकृति अपने आप जल्दी उसे स्वस्थ कर देगी। इसीलिये तो इतनी सारी तमाम पैथियां काम कर जाती हैं। वे बस सांत्वना दे देती हैं और प्रकृति अपना काम कर लेती है।

सो, कभी छोटा-मोटा बुखार आ जाये तो पेशेंट हो रहो, धैर्य से प्रतीक्षा करो—जल्दी ही प्रकृति स्वयं तुम्हें स्वस्थ कर देगी। और उस समय तुम स्वास्थ्य का आनंद जानोगे, जीवन की प्रफुल्लता को अनुभव करोगे।

दि हिंडन हारमनी, प्रवचन 11

ओशो की सभी पुस्तकें उनके बोले हुए प्रवचनों का लिपिबद्ध संस्करण हैं। केवल तीन पुस्तकें ऐसी हैं जो उन्होंने लिखी हैं, वह भी पुस्तक के रूप में नहीं—वे संकलन हैं उन पत्रों का जो उन्होंने किसी व्यक्ति विशेष को लिखे लेकिन यह ध्यान में रखते हुए कि इन पत्रों का संकलन बाद में पुस्तक का रूप ले लेगा। इन्हीं में से एक पुस्तक है: पथ के प्रदीप, जो यहां धारावाहिक रूप से प्रसुत है।

फूलों को देखना जिसे आता है

उसके लिए कांटे भी फूल बन जाते हैं

रात्रि एक वृद्ध व्यक्ति मिलने आए थे। उनका हृदय जीवन के प्रति शिकायतों ही शिकायतों से भरा हुआ था। मैंने उनसे कहा: जीवन-पथ पर कांटे हैं—यह सच है। लेकिन, वे केवल उन्हें ही दिखाई पड़ते हैं, जो कि फूलों को नहीं देख पाते। फूलों को देखना जिसे आता है, उसके लिए कांटे भी फूल बन जाते हैं।

फरीदुदीन अत्तार अक्सर लोगों से कहा करता था कि ऐ खुदा के बंदो, जीवन की राह में अगर कभी कोई कड़वी बात हो जावे, तो उस प्यारे गुलाम को याद करना। लोग पूछते: कौन सा गुलाम? तो वह निम्न कहानी कहा करता:

किसी राजा ने अपने एक गुलाम को एक अत्यंत दुर्लभ और सुंदर फल दिया था। गुलाम ने उसे चखा और कहा कि फल तो बहुत मीठा है। ऐसा फल न तो उसने कभी देखा ही था, न चखा ही। राजा का मन भी ललचाया। उसने गुलाम से कहा कि एक टुकड़ा काट कर मुझे भी दो। लेकिन, गुलाम फल का एक टुकड़ा देने में भी संकोच कर रहा है, यह देख राजा का लालच और भी बढ़ा। अंततः गुलाम को फल का टुकड़ा देना ही पड़ा। पर जब टुकड़ा राजा ने मुंह में रखा तो पाया कि फल तो बेहद कड़वा है। उसने विस्मय के साथ गुलाम की ओर देखा।

गुलाम ने उत्तर दिया: ‘मेरे मालिक, आपसे मुझे कितने ही कीपती तोहफे मिलते रहे हैं। उनकी मिठास इस छोटे से फल की कड़वाहट को मिटा देने के लिए क्या काफी नहीं है? क्या इस छोटी सी बात के लिए मैं शिकायत करूं और दुखी होऊं? आपके मुझ पर इतने असंख्य उपकार हैं कि इस छोटी-सी कड़वाहट का विचार भी करना कृतघ्नता है।

जीवन का स्वाद बहुत कुछ उसे हमारे देखने के ढंग पर निर्भर करता है। कोई चाहे तो दो अंधकारपूर्ण रातों के बीच एक छोटे से दिन को देख सकता है। और, चाहे तो दो प्रकाशोज्ज्वल दिनों के बीच एक छोटी-सी रात्रि को। पहली दृष्टि में वह छोटा सा दिन भी अंधकारपूर्ण हो जाता है और दूसरी दृष्टि में रात्रि भी रात्रि नहीं रह जाती है।



**जिसे भय से ऊपर उठना हो,
उसे समस्त के प्रति प्रेम से भर जाना होगा**

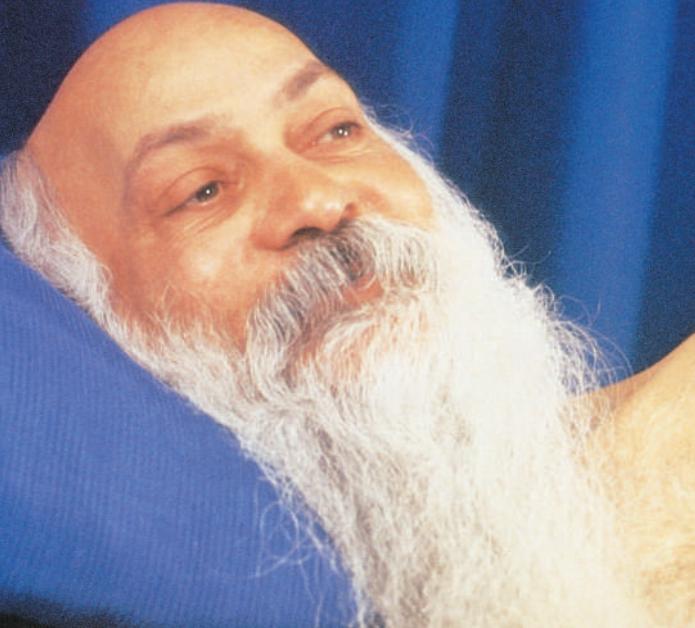
प्रेम से बड़ी कोई शक्ति है? — नहीं। क्योंकि, जो प्रेम को उपलब्ध होता है, वह भय से मुक्त हो जाता है।

एक युवक अपनी नववधू के साथ समुद्र-यात्रा पर था। सूर्यास्त हुआ, रात्रि का घना अंधकार छा गया और फिर एकाएक जोरों का तूफान उठा। यात्री भय से व्याकुल हो उठे। प्राण संकट में थे और जहाज अब डूबा, तब डूबा होने लगा। किंतु, वह युवक जरा भी नहीं घबड़ाया।

उसकी पत्नी ने आकुलता से पूछा: तुम निश्चिंत क्यों बैठे हो? देखते नहीं कि जीवन के बचने की संभावना क्षीण होती जा रही है? उस युवक ने अपनी म्यान से तलवार निकाली और पत्नी की गर्दन पर रखकर कहा: क्या तुम्हें डर लगता है? क्या मेरी तलवार से तुम्हारे प्राण संकट में नहीं हैं?

वह युवती हंसने लगी और बोली: तुमने यह कैसा ढोंग रचा? तुम्हारे हाथ में तलवार हो तो मुझे भय कैसा! वह युवक बोला: परमात्मा के होने की जब से मुझे गंध मिली, तब से ऐसा ही भाव मेरा उसके प्रति भी है। प्रेम है, तो भय रह ही नहीं जाता है।

प्रेम अभय है। अप्रेम भय है। जिसे भय से ऊपर उठना हो, उसे समस्त के प्रति प्रेम से भर जाना होगा। चेतना के इस द्वार से प्रेम भीतर आता है, तो उस द्वार से भय बाहर हो जाता है।



दमे का आघात और निश्चल ओशो

ओशो जो सिंखा रहे हैं वह स्वयं उसके शिखर हैं। वे स्वयं सीख हैं। और इसके साथ ही वे हमें सिखाते हैं कि बात शब्दों को पढ़ने या सुनने की नहीं, उन्हें जीने की है। ओशो अकलात कहते हैं न, कि हम कठिन परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करते हैं उससे ही यह जान सकते हैं कि हमने उनसे जो सीखा है वह केवल शाल्किक ज्ञान है या हमारे अनुभव का हिस्सा बन चुका है।

ओशो के पास पूना आये मुझे अभी कुछ ही सप्ताह हुए थे कि ओशो को दमे का आघात हुआ, और उन्हें देखने के लिये मुझे बुलाया गया। बंबई के दिनों में और पूना के पहले महीनों में ओशो को दमे के आघात होते थे। बाद के दिनों में, बचाव की सभी विधियों के कारण उन्हें हलके आघात ही होते। यह पहला आघात था जिसके लिये निर्वाणों (ओशो की परिचारिका) ने बुलायाथा था।

किसी ऐसे व्यक्ति को बीमार देखना बड़ा पीड़ादायी होता है, जिसे आप प्रेम करते हों। विशेषकर दमे को देखना बड़ा पीड़ापूर्ण है, क्योंकि वह व्यक्ति कठिनता से ही अगली श्वास ले पाता है। उस व्यक्ति की घूरती हुई दृष्टि होती है, और प्रायः वह पसीने से लथपथ होता है। ओशो को दमे के आघात में देखना मेरे लिए ऐसे एक प्रबुद्ध व्यक्ति को देखने का प्रथम अवसर था जिसका शरीर रुण हो।

यह अनुभव मेरे मस्तिष्क के पार था। जो कुछ मैं देख रहा था उसमें भाव-तत्व पूर्णतया अनुपस्थित था। जब आप या मैं पीड़ा में हों, बीमार हों, या कठिनाई में तो हम उसे अपने चेहरे से दर्शाते हैं। हम दर्द से कराहते हैं, श्वास लेने के प्रयास में अपने चेहरे को टेढ़ा-मेढ़ा करते हैं। ओशो नहीं। जब उनकी छाती श्वास लेने का प्रयास कर रही होती, उनके बाकी के शरीर—और निश्चित ही उनके चेहरे पर—किसी कठिनाई, किसी तनाव का कोई चिह्न न होता। एक कार के पूर्णतया विश्रांत चालक की तरह वह शांति से बैठे प्रतीत होते जिस समय मैं और निर्वाणों स्टेयरिंग ह्लील को मोड़ने के कठिन प्रयास में लगे होते।

पूरी घटना के दौरान, वह स्थिति से अप्रभावित शांत बैठे रहे। उनकी तेज, छोटी और अवरुद्ध श्वासों से मुझे स्पष्ट दिख रहा था, कि उन पर तीव्र आघात हो रहा है, उनकी छाती को सुनने से अवरोध स्पष्ट सुनाई दे रहा था। उनकी छाती बहुत तनी हुई थी—लेकिन वह हमेशा की तरह विश्रांत थे। ऐसा लगता था, जैसे उनके लिए वह सारी घटना किसी और

की छाती के साथ घट रही थी। एक शब्द में, वह बिलकुल वैसे ही थे जैसे सदा रहते—दिन या रात, लोगों में या अकेले, स्वास्थ्य में या रोग में। ओशो सदा की तरह अविचलित रहते। वह निर्भार भाव, वह हास्य, आंखों में वो टिमटिमाहट सदा वहाँ रहती।

मैंने तेजी से दमा की औषधि नापते हुए उसकी छोटी सी मात्रा सैलाइन में मिलाई—इस औषधि से हृदय में अवरोध का जोखिम रहता है, इसलिए मैं प्रक्रिया को धीमे से कर रहा था। पहले मैं लोगों की नसों में कुछ ही मिनटों के अंतराल में इस औषधि को डाल दिया करता। इस समय मैंने इसे धीमे-धीमे पच्चीस मिनट के अंतराल में प्रविष्ट होने दिया, और इस सारे समय मेरा एक हाथ ओशो की नज़्ब पर रहा। जैसे ओशो प्रवचन के दौरान कमर के नीचे एकदम निश्चल रहते वैसे ही लेटे थे वह, मौन और निश्चल, मात्र छोटी और तीव्र श्वास लेते हुए। अंत में मैंने धीरे से सुई बाहर निकाली और ट्राली को कमरे से बाहर ले गया। वह लेटे रहे वहाँ, बिना एक शब्द बोले।

कुछ मिनट के बाद निर्वाणों आई। हाँ, निश्चित ही अब वह कुछ आराम अनुभव कर रहे थे। मैंने उसे ओशो को देने के लिए कुछ गोलियाँ दीं, और कहा कि मैं अपने कमरे में प्रतीक्षा करूँगा। दमे का कुछ कारणों से, आसानी से उपचार किया जा सकता है, लेकिन यह जानने का कोई उपाय नहीं कि यह कब आपके लिए खतरनाक हो जाए। दमे का प्रत्येक आघात संभावित खतरा लिए होता है।

मैंने बैठ कर, जो घटा था उसे आत्मसात करने का प्रयास किया। वह एक अद्भुत व्यक्ति हैं। ऐसे कितने ही लोग हैं जो इसके-उसके विषय में बहुत ज्ञानी हैं। ऐसे कितने ही लोग हैं जिनके पास दूसरों को सिखाने के लिए बहुत कुछ है। लेकिन क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसे मैं कभी मिला हूँ। साक्षात् प्रतिमूर्ति हो। दूसरों को हतप्रभ कर देने के लिए पुस्तकों से सूचनाएं

ग्रहण करना बड़ा सरल है, लेकिन जो तुम दूसरों को देना चाहते हो, उसका सत्त्व स्वयं होना, ऐसा व्यक्ति मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा था।

मुझे यूरोप के प्रख्यात मनसविदों और भौतिक चिकित्सकों की एक दावत स्मरण हो आई—वे सब लोग जो अपने रोजमर्रा के जीवन में यहां-वहां राय देते हैं, अपने मरीजों को आज के युग की समस्याओं से अवगत करते हैं। एक या दो शाराब के प्याले के पश्चात, कुछ मिनट की बातचीत के बाद, यह स्पष्ट हो गया कि इस स्थिति और उस स्थिति का कितना ही ज्ञान उहें हो, वे स्वयं उसी नाव पर सवार थे जिन पर बाकी हम सब—जिसे, कहना चाहिए, ‘सामान्य’।

इसके विपरीत, ओशो, गुणवत्ता से सर्वर्था भिन्न हैं। वह वे हैं जिसकी वे बात करते हैं। वे मात्र बात ही नहीं करते, एक सच्चे स्वस्थ-चित्त, निर्भय मनुष्य की, जो क्षण की समग्रता से जीता है, जो स्वयं के लिए पूरी तरह सजग है, और साथ ही अस्तित्व के लिए पूरा सहज और उसके लिए जो अस्तित्व उसे देना चाहता है—वह वही हैं। मैं उन्हें सार्वजनिक रूप से तब तक सैकड़ों-सैकड़ों घंटे देख चुका था, और निजी रूप में केवल कुछ ही घंटे, और वह सदा ही वही निर्मल ओशो थे। अब मैंने उन्हीं ओशो को देखा, एक कठिन परिस्थिति में। और मुझे वहां कौन मिलना चाहिए? वही चमत्कारी ओशो; पूरी तरह अनप्रिडिक्टेबल, प्रत्यक्ष रूप से सदा असंगत और फिर भी सर्वदा स्वयं, एक सच्चे सद्गुरु।

तीन घंटे के बाद मुझे फिर बुलावा आया। मैं कूदकर खड़ा हुआ, नहाया, स्वच्छ वस्त्र पहने, और लाओत्सु की ओर चल पड़ा। अपने पहले आगमन के कुछ समय पश्चात ही मैं वहां गया था, यह जानने के लिए कि स्थिति ठीक तो है। और अब मैं आशा कर रहा था कि अचानक वह बिगड़ तो नहीं गई। मैं सीधा निर्वाणों के कमरे में गया; वह बोली वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तब तक रात के पौने बारह बज चुके थे। निर्वाणों ने बताया कि अब वे निश्चित रूप से बेहतर हैं, लेकिन उसने पूछा कि क्या दोबारा इंजेक्शन देना उचित होगा ताकि वे अब सो सकें। श्वास अभी भी कठिनाई से आ रही थी।

वह मुझे अंदर ले गई। वह लेटे थे, सिर तकिए पर और एक हाथ सिर के नीचे। वह हँसे और धीमे से बोले, ‘हैलो’। मैंने देखा उनकी श्वास पहले से काफी ठीक चल रही थी। ‘तुम्हारा इंजेक्शन बहुत अच्छा है,’ वे बोले, ‘दूसरे इंजेक्शन से मुझे नींद आ जाएगी?’ हमने फिर से पहले वाली प्रक्रिया दोहराई। अंत में उन्होंने अपनी आंखें खोलीं और

टिमटिमाती आंखों से, ‘अच्छा अमृतो’ कहा। मैंने अपना सामान एकत्र किया और ट्रॉली लेकर बाहर आ गया।

ओशो के साथ किसी अंतर्गत स्थिति में होना ऐसा था जैसा मैंने पहले किसी व्यक्ति के साथ अनुभव नहीं किया था। मैं काफी ‘प्रसिद्ध’ लोगों से मिला हूँ

डॉक्टर, राजनीतिज्ञ, विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिक, और यहां तक कि इंग्लैंड की रानी से हाथ मिलाया है, बातचीत की है। उन सब में एक सामंजस्य, एक समरूपता की कमी है। सब के पास अपनी-अपनी अहंकार पूर्ति के छोटे-बड़े साधन हैं।

सार्वजनिक व्यक्तित्व के नीचे, और कभी-कभी सार्वजनिक रूप से भी—सभी सामान्य भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का प्रदर्शन करते हैं; कभी इस विषय में क्रोधित होना, कभी उस विषय में दुखी होना, यह सब चलता रहता है। दूसरे शब्दों में, वे सब किसी न किसी क्षेत्र में विशिष्ट होते हुए भी अपने मन के उतने ही गुलाम हैं जितने बाकी हम सब।

ओशो में यह शाश्वत भावनात्मक प्रदर्शन और मन की प्रतिक्रिया पूर्णतया अनुपस्थित है। खेलमय भाव है वहां; निश्चित ही; उनका सारा स्वरूप ऐसी प्रतीति करता है, जीवन एक खेल है—‘लीला’ कहते हैं हिंदू इसे—लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं था जिसे आप व्यक्तित्व की भाँति पकड़ सकें या उससे संबंधित हो सकें। किसी के व्यक्तित्व के साथ जुड़ने का संपूर्ण सामाजिक व्यवहार ओशो के साथ संभव न था। कुछ भी हो रहा हो, दूसरे व्यक्ति के साथ सामान्य बातचीत करने जैसा अनुभव ओशो के साथ नहीं था।

ओशो के साथ कोई भी संपर्क, कितना भी छोटा क्यों न हो, सदा ही कुछ सीखने का एक अवसर है।

उस वर्ष बाद में, ओशो के मधुमेह की देख-रेख के लिए, उनके वजन और भोजन में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी। फिर से परिस्थिति कठिन थी। सारे संसार में मधुमेह के रोगी अपने भोजन की मात्रा और अपनी भूख के बीच युद्ध कर रहे हैं। ओशो के साथ मामला भिन्न था; उन्होंने एकदम अपना भोजन आधा कर दिया। फिर से, वह लिमोसिन चलाने लगे—हम टायर बदलते रह गये।

सदा की तरह ओशो जो सिखा रहे हैं वह स्वयं उसके शिखर हैं। वे स्वयं सीख हैं। और इसके साथ ही वे हमें सिखाते हैं कि बात शब्दों को पढ़ने या सुनने की नहीं, उन्हें जीने की है। ओशो अकसर कहते हैं न, कि हम कठिन परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करते हैं उससे ही यह जान सकते हैं कि हमने उनसे जो सीखा है वह केवल शान्तिक ज्ञान है या हमारे अनुभव का हिस्सा बन चुका है।



बोधि पथ प्रदीप

अतीशा दीपांकर श्रीजन

बंगलादेश में ढाका के निकटवर्ती शहर बिक्रमपुर में वज्रयोगिनी नाम का एक स्थान है। वहां मिट्टी का एक विशाल टीला है, जिसे 'नास्तिक पंडित भीत' कहा जाता है। सदियों से उस टीले के पास से गुजरने वाला हर व्यक्ति हाथ जोड़कर उसे नमस्कार करता है, लेकिन यह जानता कोई भी नहीं कि यह नमस्कार किसकी स्मृति में किया जा रहा है। नास्तिक पंडित भीत, यानि नास्तिक पंडित का घर—जिसे सदियों से जमा होती मिट्टी ने अपने आगोश की गड़ियों में छिपा लिया। कोई रहा होगा वहां, जिसने धार्मिक आस्थाओं के ऐसे परखच्चे उड़ाए होंगे कि उसे नास्तिक कहा गया; लेकिन विद्वता का वह ऐसा शिखर भी होगा कि उसे पंडित भी कहना पड़ा, और ऐसी उसकी महिमा भी होगी कि उसका नाम विस्मृत हो जाने के बावजूद भी सदियां उसे प्रणाम करती आई हैं। निश्चित ही कोई महामानव रहा होगा।

उस महामानव की जन्मभूमि ने भले ही उसका नाम मिट्टी में छिपा दिया हो, और उस भूमि के जनमानस ने उसे अपने मनस पटल से बिसरा दिया हो, लेकिन बिक्रमपुर के पास ही बहती विशाल मेघना नदी उसकी स्मृतियों को ही नहीं बल्कि उसकी जीवित तरंगों को भी लेकर बहती है।

ये तरंगें दू

में धोल देती है। ब्रह्मपुत्र कैलाश पर्वत के निकट मानसरोवर झील से कोई 90 किलोमीटर दू

हां वह यारलुंगा

सांगपों कहलाती है, फिर सियांग नाम से अरुणाचल प्रदेश में प्रवेश करती है, वहां से आसाम पहुंचकर लोहित हो जाती है और ब्रह्मपुत्र भी कहलाती है, और फिर बंगलादेश में पहुंचती है जहां उसका नाम जमना हो जाता है। गंगा भी बंगलादेश पहुंचती है जहां वह पद्मा कहलाती है, ढाका के निकट जमना और पद्मा मिलती हैं और दोनों नदियों के संगम के बाद जो विशाल नदी बनती वह मेघना है। मेघना बंगाल की खाड़ी में गिरकर सागर हो जाती है।

मेघना में भले ही कितना पानी बह गया हो, लेकिन उसे याद है कि ग्यारहवीं सदी की शुरुआत में एक नौका उसमें उतरी थी और धारा से उलटी दिशा में चलती हुई वहां तक पहुंचती थी जहां वह सियांग कहलाती है। आगे पर्वत थे, और नाव उससे आगे नहीं जा सकती थी। नाव वहीं छोड़ दी गई, और नाव में सवार एक महामानव और उनके संगी तट पर उतर आए। यहां से वे उसीके किनारे चढ़ाई चढ़ते हुए, महीनों की यात्रा के बाद यारलुंग सांगपों के उद्गम के पास पहुंचे। उस महामानव के पांच तिब्बत की धरती पर पड़े, और पृथ्वी पर अध्यात्म के इतिहास ने एक नये अध्याय में प्रवेश किया। उनका नाम था अतीशा दीपांकर श्रीजन।

अतीशा का नाम शायद भारत की स्मृति से सदा के लिए लुप्त ही रह जाता यदि उन्नीसवीं सदी के अंत में एक इतिहास-अन्वेषक शरत चंद्र दास तिब्बत न गए होते। यूं तो उन्हें ब्रिटिश हुक्मरानों ने ब्रिटिश भारत के एक सांस्कृति प्रतिनिधि की तरह तिब्बत भेजा था, लेकिन उनके मन में कुछ और ही था। तिब्बत में बौद्ध का जो आध्यात्मिक वैभव प्रकट हुआ, वह पृथ्वी पर कहीं और नहीं हुआ—और भारत से तो लुप्त ही हो गया। शरत चंद्र दास का अन्वेषक मन जानना चहता था कि यह आध्यात्मिक संपदा किन-किन मार्गों द्वारा भारत से तिब्बत पहुंची। उनकी समझ कहती थी कि यदि उन मार्गों को तलाशा जा सके तो वे कुंजियां मिल सकती हैं जो उस संपदा के द्वारा भारत में फिर से खोल सकें। हालांकि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि होने के कारण उन्हें तिब्बत में बहुत संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा था, और वहां उनका स्वागत भी नहीं था, लेकिन तिब्बत और भारत के बीच घटे सांस्कृतिक

इतिहास को जानने की उनकी चाह इतनी गहरी थी कि धीरे-धीरे वहां उनके लिए द्वारा खुलते चहे गए। तिब्बत में उन्होंने चार वर्ष बिताये। इन चार वर्षों में उन्होंने तिब्बत का चप्पा-चप्पा छाना, हर मठ और हर ग्रंथालय में गए।

शरत चंद्र को वहां तिब्बती में ही नहीं, संस्कृति, बंगाली और पाली में लिखी पांडुलिपियां भी देखने को मिलीं। इतना प्रचुर बौद्ध साहित्य देखकर उनकी आंखें फटी की फटी रह गईं। उनकी समझ से परे था कि इतनी संपदा भारत ने कैसे खो दी। फिर उन्हें समझ आया कि भारत ने यह संपदा खो नहीं दी, मिटा दी—जानबूझकर।

खैर, शरत चंद्र दास ने हाथ से लिखकर अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपियां बनाई, यहां-वहां बिखरे इतिहास के बिंदुओं को जोड़कर स्पष्ट लकड़ीं खींचीं, बहुत-सा अनुवाद अंग्रेजी में किया—और एक महान संपदा विश्व को उपलब्ध करा दी। इसी खोज में प्रकट होते हैं अतीशा, जिनसे निकली कई धाराओं में से एक धारा दलाई लामा तक भी पहुंचती है।

बिक्रमपुर का वह टीला जिसे सब अनजाने प्रणाम करते हैं, वह अपने नीचे उस महल के अवशेषों को दबाए हुए है जिसमें अतीशा का जन्म हुआ था। बिक्रमपुर पूर्वी बंगाल के पाल साम्राज्य की राजधानी थी, जिसकी स्थापना राजा धर्मपाल ने की थी। दसवीं सदी के उत्तरार्ध से ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्ध तक उनके प्रपौत्र कल्याणश्री राज्य पर सत्तासीन थे। धर्मपाल से कल्याण श्री के राज्य तक का समय कोई डेढ़ सौ वर्ष का बनता है। इन डेढ़ सौ वर्षों में कई बौद्ध विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई, जिनके अवशेष आज भी बंगलादेश में जगह-जगह मिलते हैं। इन विश्वविद्यालयों में बौद्ध व वेदांत दर्शन के साथ-साथ तर्क, गणित, तंत्र, संगीत, वास्तु, अंतरिक्ष विज्ञान, अभियांत्रिकी व कृषि का भी अध्ययन होता था। भारत से ही नहीं बल्कि तिब्बत, चीन, इंडोनेशिया, श्रीलंका, नेपाल व कंबोडिया से भी हजारों विद्यार्थी यहां आते थे।

आचार्यों के रूप में भी न जाने कितने मनस्वी व मनीषी सुदूर से आमंत्रित किए गए थे। संस्कृति, विद्वता, विचार और अंतस प्रयोगों का एक वातावरण था। इन्हीं डेढ़ सौ वर्षों में इस क्षेत्र में सरहा ने महामुद्रा योग रचा, तिलोपा ने अनुत्तरयोग तंत्र खड़ा किया, मत्स्येन्द्र नाथ ने शैव तंत्र को पुनरुज्जीवित किया। जो कुछ भी यहां रचा और बांटा जा रहा था, वह सब तिब्बत से आए खोजी वापस तिब्बत ले जाकर संग्रहीत कर रहे थे, मानो नियति जानती हो कि यह सारा ज्ञान कहीं अन्यत्र संरक्षित कर लेना होगा।

इसी स्वर्णिम काल में अतीशा का जन्म हुआ। अतीशा राजा कल्याणश्री के तीन पुत्रों में से दू

चंद्रगर्भ। अतीशा का लालन-पालन वैसी ही सुविधा और विलासिता में हुआ जैसे कि एक वैभवशाली साम्राज्य के राजकुमार का होता है। कहते हैं उस समय पाल साम्राज्य इतना समृद्ध था कि बिक्रमपुर के महल पर तेरह शुद्ध स्वर्ण के गुंबद थे, स्वर्ण-मढ़ित दो हजार दरवाजे थे, चालीस बगीचे थे जिन सबमें तरण ताल थे। राजा कल्याणश्री राजकुमारों को घुड़सवारी, आखेट और युद्ध कौशल के साथ-साथ ज्ञानोपार्जन के लिए भी उत्साहित करते थे।

राजकुमार चंद्रगर्भ का रुद्धान ज्ञानोपार्जन की ओर बहुत अधिक था। बचपन से ही उनमें एक भूख-सी दिखाई देती थी कि जैसे वह सब जान लेना चाहते हैं, और जान ही नहीं लेना चाहते बल्कि हर चीज में पूरी दक्षता चाहते हैं। चौदह वर्ष की आयु में ही वह एक दक्ष संगीतकार की तरह जाने जाने लगे। साथ ही स्थापत्य, वास्तु और अभियांत्रिकी के वह ऐसे परामर्श देते कि राज्य के विशेषज्ञ भी दंग रह जाते। बाइस की आयु तक चंद्रगर्भ महायान, हीनयान, बज्रयान, तंत्र, वेद, वेदांत, सांख्य और तर्क में निष्ठात हो चुके थे। इसके बाद वह एक-एक विषय की गहराई में जाकर उसमें कुछ नया जोड़ना चाहते थे, नया विस्तार देना चाहते थे। सात वर्ष बीत गए, और उनतीस की उम्र में चालीस विषयों पर वह अपने समय के सबसे बड़े ज्ञाता कहलाने लगे। आज की शिक्षा व्यवस्था के समकक्ष रखें, तो उनतीस की उम्र में वह चालीस पी एच डी कर चुके थे। उन्हें पंडित चंद्रगर्भ के नाम से पुकारा जाने लगा था।

कल्याणश्री राजकुमार चंद्रगर्भ की विद्वता से बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने ठान लिया कि वह उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी बनाएंगे। इस विषय में उन्होंने एक दिन राजकुमार चंद्रगर्भ से बात की, और यह भी कहा कि अब समय है उनका विवाह करा दिया जाये।

चंद्रगर्भ ने कल्याणश्री की पूरी बात सुनी और उसमें से तीन शब्द ‘अब समय है’ उनकी छाती पर बैठ गए। सांख्य में निष्ठात उनके चित्त ने उनसे कहा कि ‘अब समय है’ का अर्थ हुआ कि अब तक जो उन्होंने किया वह तो केवल भूमिका थी, जीवन का असली अध्याय तो अभी लिखा जाना बाकी है। और जो लिखा जाना है उसके लिए अब समय प्रौढ़ हो चुका है। क्या यह सारी भूमिका विवाह और साम्राज्य के लिए थी? या फिर समय तो प्रौढ़ हुआ है, लेकिन किसी और चीज के लिए?

इसी उधेड़-बुन में सो गए चंद्रगर्भ ने रात एक स्वप्न देखा। स्वप्न में उन्होंने देखा कि एक कोमलांगी स्त्री महल के बगीचे में तरण-ताल की ओर जा रही है जिसे वह पीछे से देख रहे हैं। उन्हें लग रहा है कि ताल के पास वह वस्त्र उतारकर उसमें प्रवेश करेगी। वह अपने पूरे शरीर में उत्तेजना महसूस करते हैं। उस उत्तेजना में तृष्णा भी है, कामना भी है, इच्छा भी है—और एक अजीब-सी पीड़ा भी कि यदि यह स्त्री मेरी न

हुई तो क्या होगा; एक हिंसक विचार भी है कि इसे तो मैं पाकर रहूँगा। तभी वह स्त्री पीछे मुड़ती है, और बुद्ध में बदल जाती है। एक क्षण में सारी उत्तेजना, कामना, पीड़ा और हिंसा मिट जाती है। एक शांति व्याप हो जाती है। तृप्ति का एक भाव उत्तर आता है कि अब कुछ पाने को शेष नहीं है।

चंद्रगर्भ के अचेतन ने ही दो विकल्प उनके सामने स्पष्ट कर दिए। वह सुबह उठे और 130 घुड़सवारों को बुलाया, पिता को कहा कि वह घुड़सवारों के साथ जंगल में आखेट के लिये जा रहे हैं। वह जानते थे कि वह जो करने जा रहे हैं, वह यदि पिता को बताया तो पिता अनुमति नहीं देंगे। जंगल पहुंचकर चंद्रगर्भ ने घुड़सवारों से कहा कि वे महल लौट जाएं, और अब वह उनके साथ वापस नहीं लौटेंगे। मानो इतिहास स्वयं को दोहरा रहा था—डेढ़ हजार वर्ष पूर्व राजकुमार सिद्धार्थ ने कोचवान को वापस लौटा दिया था और अकेले जंगल चले गए थे, यहां राजकुमार चंद्रगर्भ ने घुड़सवारों को लौटा दिया था ताकि वह अकेले जंगल जा सकें। संयोग से दोनों की उम्र उस समय उनतीस ही थी।

जंगल में आचार्य शिलारक्षित का विहार था। वह बौद्ध धर्म की महासंघिका धारा से आते थे। चंद्रगर्भ उन्हीं से दीक्षा लेकर भिक्षु होना चाहते थे।

शिलारक्षित ने चंद्रगर्भ को दीक्षित किया और नया नाम दिया—दीपांकर श्रीजन। इसके बाद शिलारक्षित ने जो कहा, ऐसा कहने की हिम्मत इतिहास में बहुत कम देखने को मिली होगी। शिलारक्षित ने कहा, ‘दीपांकर, मुझे अभी संबोधि उपलब्ध नहीं हुई है। मैंने तुझे दीक्षित किया क्योंकि परंपरा मुझे ऐसा करने का अधिकार देती है। मैं तुझे कुछ भी नहीं दे सकता, क्योंकि तेरा ज्ञान मुझसे अधिक है। तू ज्ञान पाने के लिए भिक्षु हुआ भी नहीं है—संसार में कोई व्यक्ति जितना ज्ञान पा सकता है, वह तू सब पा चुका। न ही तू इसलिए भिक्षु हुआ कि तू जीवन से निराश हो चुका है, और मैं तेरे जीवन में कोई आशा लाऊं। तू तो अपने ज्ञान को अपना अनुभव और अपनी संबोधि बनाने के लिए भिक्षु हुआ है। मैंने तो केवल दीक्षा की विधि पूरी की है, दीक्षा तूने स्वयं ली है। मेरे पास न भी आता तो बिना विधि के तेरी दीक्षा हो जाती। जो तू खोज रहा है, वही मैं भी खोज रहा हूँ।

पास रुकने की। अब तू खोज में आगे निकल, बस खोजे बिना मत रुकना।’

आचार्य शिलारक्षित ने गुरुत्व की लालसा और लोभ से ऊपर अपनी साधना की निष्ठा को रखा। बिना कोई उपदेश दिए उन्होंने दीपांकर को साधना के प्रति निष्ठावान रहने का उपदेश दे दिया।

दीपांकर बिक्रमपुर लौट आए और विक्रमशिला विहार में रहने लगे।

कल्याणश्री दीपांकर श्रीजन के निर्णय को बदलवाने उनके पास नहीं गए। वह जीवन के मूल्यों की वरीयता को समझते थे। वह यह भी जानते थे कि एक राजा का पिता होने का गौरव तो हर राजा पाता है, लेकिन एक संबुद्ध का पिता होने का गौरव विरलों को ही मिलता है। दीपांकर यदि संबोधि की राह पर निकल पड़े हैं, तो वह उनके मार्ग में नहीं आयेंगे।

साधना के जितने मार्ग उपलब्ध थे, दीपांकर उन सबके ज्ञाता थे। उन्होंने अपनी साधना की शुरुआत अपनी चित्त-वृत्तियों और भावों के निरीक्षण से शुरू की। लेकिन वह पाते कि उनके निरीक्षण से अधिक वह उनका विश्लेषण कर रहे हैं, क्योंकि हर विचार के साथ उनका ज्ञान खड़ा हो जाता। वह हर विचार को अंश-अंश काटकर देखते कि उसकी निर्मिती कैसे हुई, और वह कहां पहुंचना चाह रहा है। विचार और मन के इतने सूक्ष्म विश्लेषण में वह उत्तरते चले गए जहां तक कोई मनोविश्लेषण कभी पहुंच नहीं पाया है। मनोविश्लेषण की यह प्रक्रिया चौबीस घंटे चलती रहती। वह यह भी जानते थे विचार ही विचार का विश्लेषण कर रहा है, और विचारों का विश्लेषण वह कर इसलिए रहे थे कि विचार-शून्यता की एक झलक मिल जाए। वह विचारों को रोकने का प्रयास करते तो विचार तो न रुकते, एक तनाव पैदा हो जाता। अब यह तनाव दिन-रात का था—सतत खिंचा हुआ स्नायु-तंत्र और पेट में जैसे एक गांठ।

लेकिन दीपांकर हताश नहीं थे। जो वह अनुभव करना चाहते थे, उसके लिए वह कोई भी मूल्य चुकाने को तैयार थे, यह आठ पहर का तनाव तो उसके लिए कोई मूल्य ही नहीं था। एक दिन उन्होंने कुछ विद्यार्थियों को धर्मकीर्ति के बारे में बात करते सुना। धर्मकीर्ति सुमात्रा (इंडोनेशिया) के सुवर्णदीप में रहते थे। एक संबुद्ध सद्गुरु की भाँति उनकी ख्याति पूरे एशिया में थी।

धर्मकीर्ति—इस नाम के विन्यास में ही कुछ ऐसा था कि अचानक दीपांकर खड़े के खड़े रह गए। एक क्षण को ही सही, लेकिन भीतर कुछ रुक गया। अब दीपांकर को आगे का रास्ता मिल गया।

बंगाल की खाड़ी से सुमात्रा के लिए रोज नौकाएं निकलती थीं। दीपांकर तुरंत बंदरगाह की ओर निकल गए। बंदरगाह से एक नौका कुछ व्यापारियों को लेकर सुमात्रा के लिए निकल रही थी। दीपांकर उसमें सवार हो गए। 49 दिन की समुद्री यात्रा के बाद वह सुवर्णदीप पहुंचे।

जब अंततः वह धर्मकीर्ति के पास पहुंचे तो धर्मकीर्ति अपने कक्ष में अकेले बैठे थे और उनके बैठने के आसन के अतिरिक्त वहां और कुछ

भी नहीं था। इसके पहले कि दीपांकर धर्मकीर्ति का अभिवादन भी कर पाते, धर्मकीर्ति जमीन की ओर इशारा करते हुए बोले—सबसे पहले यह सारे ग्रंथ इस आग में जला दे। दीपांकर ने हैरान होते हुए पूछा कि आग कहां है? धर्मकीर्ति बोले, आग की तो पूछ ली लेकिन यह नहीं पूछा कि ग्रंथ कहां हैं?

मन की बारीकियों का विश्लेषण करते-करते दीपांकर की बुद्धि इतनी सूक्ष्म हो चुकी थी कि एक क्षण में ही वह समझ गए कि ग्रंथ कहां है और आग कहां है, ग्रंथों को क्यों और कैसे जलाना है। बात एक क्षण में ही हो गई। दीपांकर ने आंखें बंद कर लीं और भीतर एक महाशून्य को पाया।

इस महाशून्य का विश्लेषण करने वाला भीतर कोई था ही नहीं। विश्लेषण करने वाला तो क्या उसका निरीक्षण करने वाला, देखने वाला या अनुभव करने वाला भी कोई नहीं था।

दीपांकर इस अवस्था में धंटों खड़े रहे। धर्मकीर्ति ने उन्हें अकेला छोड़ दिया, और बाहर चले गए। अगली सुबह जब वह कक्ष में लौटे तो दीपांकर अभी भी ज्यों के त्यों खड़े थे। धर्मकीर्ति ने उन्हें हिलाया तो उन्होंने आंखें खोलीं। धर्मकीर्ति ने पूछा कि तू क्या अनुभव कर रहा है, तो दीपांकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह धर्मकीर्ति को ऐसे देख रहे जैसे वह वहां हों ही नहीं।

धर्मकीर्ति ने जब उनकी आंखों का शून्य देखा तो समझ गए कि क्या हुआ है। उन्होंने दीपांकर से बोलना शुरू किया। इस बार वह ‘तू’ की जगह ‘आप’ का प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने कहा, ‘आप महान हैं। आप को प्रणाम। जब चित्त के विचारों, भावों और वृत्तियों के रुक जाने से उसकी गति बंद हो जाती है तो वहां शून्य हो जाता है। इस अवस्था में बोधिचित्त प्रकट होता है जो चित्त की शून्यता को देख व अनुभव कर पाता है। यह संबोधि है। संबुद्ध बोधिचित्त के पास क्षमता होती है कि वह चित्त का उपयोग कर सके। संबोधि का क्रमिक विकास महाशून्य में फलित होता है और निर्वाण घटता है। आप तो सीधे ही निर्वाण में प्रवेश कर गए। आपने बोधिचित्त की अवस्था तो जानी ही नहीं। आप महान हैं, लेकिन आपको दो कदम पीछे की यात्रा करनी होगी ताकि बोधिचित्त निर्मित हो। बोधिचित्त महाशून्य और चित्त के बीच का सेतु है, अतः वही महाशून्य को भाषा तक लाकर शब्द दे सकता है।’

दीपांकर खड़े रहे। उनके लिए उस समय धर्मकीर्ति के शब्द शून्य में उठती ध्वनियां थीं, जिनके पीछे कोई अर्थ या प्रयोजन नहीं था। धर्मकीर्ति ने उन्हें इसी अवस्था में छोड़ दिया, लेकिन वह जानते थे कि यदि दीपांकर को चित्त तक नहीं लाया गया तो उनका परिनिर्वाण हो जाएगा, देह छूट जायेगी। चित्त के भाव ही देह को चलित रखते हैं।

एक महीना बीत गया। दीपांकर की देह सूखती चली गई, क्योंकि

वह न खाते थे न पीते थे। बस महाशून्य में स्थिर बैठे रहते थे। लग रहा था कि अब देह रहेगी नहीं। देह का जाना धर्मकीर्ति के लिए चिंतनीय नहीं था, वह भी उस व्यक्ति की देह जो महाशून्य में स्थिर हो गया हो—वह तो मंगल क्षण है, महापरिनिवारण है। लेकिन इतने अपार ज्ञान से दीपांकर ने जो विस्तार चित्त को दिया था, और फिर उस चित्त ने इस पूरे ज्ञान के विश्लेषण से जो पैनी सूक्ष्मता अर्जित की थी, वह यदि बोधिचित्त के संपर्क में सक्रिय हो सकती तो पूरे जगत को बहुत समृद्ध कर सकती थी। दीपांकर की देह का चले जाना एक महागुरु का बिना बोले ही चले जाना होता।

धर्मकीर्ति जानते थे महाशून्य में मिट गए चित्त को केवल एक भाव द्वारा सृजित किया जा सकता है, और वह है करुणा। उनका मार्ग तो शून्यता का था, जिसमें चित्त की हर वृत्ति को विलीन कर दिया जाता है। यदि करुणा की वृत्ति को पैदा करना हो, तो धर्मकीर्ति जानते थे यह कार्य उनके मित्र धर्मरक्षित कर सकते हैं, जो करुणा के मार्ग पर चलकर संबोधि को उपलब्ध हुए थे। धर्मकीर्ति ने कुछ भिक्षुओं के साथ दीपांकर को धर्मरक्षित के विहार में भिजवा दिया।

धर्मरक्षित ने दीपांकर पर क्या कार्य किया, उन पर क्या प्रयोग किए—इस सबका कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। वह उनके पास वर्षे रहे। अंततः दीपांकर करुणा-समाधि को उपलब्ध हुए। निर्वाण को उपलब्ध व्यक्ति संबोधि को उलपब्ध हुआ—असंभव संभव हुआ।

धर्मरक्षित ने दीपांकर से कहा, आप महान हैं। निर्वाण के बाद आपने करुणा-समाधि से बोधिचित्त को जन्म दिया। अब जगत प्रतीक्षा करता है कि आपकी करुणा सक्रिय हो। मेरे मित्र योगी मैत्रेय सेवा मार्ग से संबोधि को उपलब्ध हुए हैं, वह आपकी करुणा को सक्रियता में निर्दिष्ट कर सकते हैं। आप अब उनके पास जाएं।

करुणा-समाधि पा गए व्यक्ति की करुणा को सक्रियता में निर्दिष्ट होने की क्या आवश्यकता है, यह बता पाना कहानीकार के सामर्थ्य और अधिकार-क्षेत्र से बाहर है। यह प्रश्न कई पाठकों के मन में जगा होगा, लेकिन बुद्धों के जगत के रहस्य को यूं ही छोड़ते हुए, हमें कहानी के साथ आगे बढ़ना होगा।

दीपांकर कुछ वर्ष योगी मैत्रेय के साथ रहे। और उनमें सेवा-समाधि का उदय हुआ।

उहें सुमात्रा में रहते हुए बारह वर्ष बीत चुके थे, वह वापस भारत के लिए निकल पड़े। जिस दिन उनकी नाव बंगाल की खाड़ी पर आकर लगी होगी, समंदर में उतरती मेघना जरूर कुछ तेज बही होगी। उसने दौड़कर करुणावतार का स्वागत करना होगा।

राजा कल्याणश्री जो कि बारह वर्षों से सतत दीपांकर के विषय में समचार प्राप्त करते रहे थे, वह भी सैकड़ों लोगों के साथ उनके स्वागत के लिए पहुंचे थे। उन्होंने तीन बार झुककर दीपांकर को प्रणाम किया। उनके प्रणाम करने में बुद्धत्व के प्रति सम्मान भी था, और एक पिता का गौरव भी। उन्होंने दीपांकर से कहा कि वह जिस क्षेत्र या प्रांत में चाहेंगे, उनके लिए विहार का निर्माण करवा दिया जाएगा। दीपांकर ने कहा वह किसी विहार की स्थाना करने की अपेक्षा किसी विश्वविद्यालय में पढ़ाना चाहेंगे ताकि विद्यार्थियों को वह हर विषय से बोधिचित्त तक पहुंचने के मार्ग से परिचित करा सकें—चाहे वह दर्शनशास्त्र हो कि अभियांत्रिकी। विद्यार्थी जब इस मार्ग से परिचित होंगे तो वह इसका उपयोग जीवन के हर क्षेत्र में करेंगे। फिर वे भवन निर्माण भी करेंगे तो वह बोधिचित्त का सृजन होगा।

दीपांकर का स्वागत करने आए लोगों में विक्रमशिला विहार के आचार्यगण भी थे। उन्होंने दीपांकर को आमंत्रित किया कि वे उनके विश्वविद्यालय के कुलपति हों। विक्रमशिला विहार में उस समय 8000 विद्यार्थी थे, 108 आचार्य थे और चालीस विषयों की वहां दीक्षा दी जाती थी जिन सबमें दीपांकर पारंगत थे। दीपांकर ने सारी शिक्षा व्यवस्था को बदलकर रख दिया। विक्रमशिला की शिक्षा बौद्धिक कौशल से अधिक प्रायोगिक शिक्षा हो गई। वज्रयान, महायान, हीनयान, तंत्र, वेदांत, जिन—सब प्रायोगिक हो गये। दीपांकर ने सरहा के महामुद्रा योग को भी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया, और चीन में चल रहे चान के प्रयोगों को भी। अभियांत्रिकी, वास्तु, स्थापत्य, संगीत और अन्य कलाओं की शिक्षा में भी ऐसे परिवर्तन किए कि उनसे निकला सृजन ऐसा हो कि वह उस सृजन का सुख लेने वालों को चित्त के पार ले जा सके।

दीपांकर की ख्याति पूरे एशिया में फैल गई। उनके निर्देशन में शिक्षा पाने के लिए विद्यार्थियों का ही नहीं, ऐसे लोगों का भी तांता लगने लगा जो उनसे बोधिचित्त की यात्रा में दीक्षित होना चाहते थे। एक समय आया जब विक्रमशिला में विद्यार्थियों की संख्या 16000 हो गई। इससे अधिक की क्षमता वहां नहीं थी। सो दीपांकर अन्य विश्वविद्यालयों—सोमपुर विहार, मैनामती विहार, ओदांतपुरी विहार, नालंदा—में भी जाने लगे। वह बौद्ध विहारों में भी जाते और वहां कोई आडंबर होते देखते तो उनकी भर्त्सना करते। वह दिखाते कि कैसे आडंबरहीन लगने वाली प्रक्रियाएं भी मात्र आडंबर ही हो सकती हैं। उनकी इस चोट की धार में बौद्ध ही नहीं, ब्राह्मण व जिन-मार्ग के पुरोहित भी आते। यही कारण था कि ब्राह्मणों ने उन्हें नास्तिक पंडित कहकर उनकी निंदा शुरू कर दी।

दीपांकर ने बहुत से ग्रंथों की भी रचना की। तंत्र पर एक ग्रंथ उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ के साथ मिलकर भी लिखा। ये सभी ग्रंथ बाद में नष्ट हो गए। दीपांकर ने संभवतः—या निश्चित ही—भविष्य में झांक लिया होगा। शायद वह जान गए होंगे कि भारत में उनका कार्य भविष्य में नहीं बचेगा। शायद इसीलिए उन्होंने तिब्बत के सम्राट येशे-ओ द्वारा अपने दू

कर लिया। और फिर मेघना से यारलुंग सांगपों तक की वह ऐतिहासिक यात्रा हुई।

तिब्बत में येशे-ओ ने दीपांकर के स्वागत के लिए एक विशाल राजकीय सभा बुलाई। सभा में सम्राट ने तीन बार झुककर दीपांकर को प्रणाम किया, और धोषणा की कि दीपांकर श्रीजन अब से तिब्बत में जिस नाम से पुकारे जायेंगे वह होगा, अतीशा—त्रिगुण महान्।

तिब्बत में अब तक भारत से केवल सिद्धों का ज्ञान आया था। पहली बार भारत से एक महासिद्ध तिब्बत पहुंचे। तिब्बत में अतीशा एक ही जगह नहीं टिके, हर जगह धूमे। द्रोम, जो भारत से उन्हें लेकर आया था, अब उनके साथ ही बना रहा—उनके शिष्य के तरह भी, अनुचर की तरह भी, और अनुवादक की तरह भी। अतीशा ने तिब्बत को आडंबरों से मुक्त किया, उसे अध्यात्म के पंख दिए, अनेकानेक गुह्य प्रयोग दिए जो आज भी जीवित हैं। अन्य ग्रंथों के साथ-साथ ही यहीं उन्होंने बोधि पथ प्रदीप की भी रचना की जो 67 सूत्रों वाला ग्रंथ है जिसमें सात चरणों में चित्त से बोधिचित्त तक पहुंचने की यात्रा अंकित है।

अतीशा ने तिब्बत में अभियांत्रिकी और स्थापत्य भी सिखाया और कई बांध निर्मित करवाए। उन्होंने वहां कृषि के नए कौशल भी सिखाए। उन्होंने कहा कि तिब्बत को एक ऐसा देश बनना होगा जो स्वयं पर ही आश्रित रहते हुए स्वयं को गुह्य रख सके। आने वाले समय में पूरा एशिया एक उहापोह से गुजरा, लेकिन तिब्बत उससे अछूता बना रहा।

ओतशा सत्रह वर्ष तिब्बत में रहे और भारत नहीं लौटे। तिब्बत में ही जब उन्होंने देह छोड़ी तो उनकी आयु बहतर वर्ष की थी। उनके पीछे उनका कार्य कई धाराओं में बह निकला, क्योंकि उनका कार्य बहुआयमी था। पीछे तिब्बत में मारपा हुए, मिलारेपा हुए, कई सिद्ध हुए, सैंकड़ों विभूतियुक्त लामा हुए, और आज भी वे परंपराएं जीवित हैं। हां, पीछे आडंबर भी चले, जो हर सिद्ध के पीछे सदा चले हैं। लेकिन सब राख नहीं हुआ, आग भी जलती रही।

इधर भारत में बौद्ध धर्म को सामूल नष्ट करने का दौर चला। पूर्वी बंगाल में भी पाल साम्राज्य का अंत हुआ और एक हिंदू राजा ने बागड़ेर संभाली। उसने सभी बौद्ध ग्रंथ नष्ट करवा दिए जिनमें अतीशा के ग्रंथ भी थे। फिर तुर्किस्तान के लुटेरे आए और उन्होंने सभी विहार भी नष्ट कर दिए। फिर सदियां बीतीं और भारत में अतीशा के नाम पर बचा एक

मिट्टी का टीला—नास्तिक पंडित भीत।

शरतचंद्र दास को धन्यवाद कि वह फिर से अतीशा को यारलुंग सांगपों से मेघना तक उतारकर लाए। लेकिन अतीशा की उनकी खोज सिर्फ शोध-ग्रंथों में कैद रह गई। इसके बाद सौ वर्ष और लगे जब ओशो अतीशा के ग्रंथ बोधि पथ प्रदीप पर बोले। उनके ये प्रवचन अंग्रेजी में दि बुक ऑफ विज़डम के नाम से हुए। ओशो अतीशा पर केवल बोले ही नहीं—अतीशा मात्र शाब्दिक ज्ञान के हस्तांतरण के पक्षधर नहीं हैं—ओशो ने अतीशा के वचनों में से एक ध्यान विधि भी निचोड़ी।

यह विधि करुणा-समाधि की विधि है, जिसमें भीतर आती श्वास के साथ यह भाव किया जाता है कि आप समस्त संसार के दुख अपने भीतर ले रहे हैं, और बाहर जाती श्वास के साथ भाव किया जाता है कि आप समस्त संसार के मंगल के लिए आशीर्वाद का भाव बाहर भेज रहे हैं। ओशो कहते हैं कि यह विधि व्यक्ति को पारस जैसा कर जाती है।

ओशो ने तिब्बत के विषय में भी विस्तार से बताया है कि कैसे पूरा एक देश एक बुद्धक्षेत्र में रूपांतरित हो गया। और यह भी कि उस बुद्धक्षेत्र का बचे रहना पूरी पृथ्वी के लिए जरूरी है क्योंकि वह एक आध्यात्मिक संतुलन बनाए रखता है—ठीक उसी तरह जैसे ब्राजील के रेन फॉरेस्ट पूरी पृथ्वी के फेफड़े हैं, और अंटार्कटिका की हिम पूरे संसार के वातावरण को संतुलित रखती है। इसीलिए जब चीन ने तिब्बत पर कब्जा किया था तो ओशो ने उसे मनुष्यता के इतिहास का काला दिन कहा था।

हम नहीं जानते कि तिब्बत में संग्रहीत ऊर्जा ने इस पृथ्वी को कितने अवसादों से बचाया होगा। अतीशा को तीन बार प्रणाम।

ओशो के शब्दों में:

भारत ने विश्व को महान उपहार दिए हैं। अतीशा उन महान उपहारों में से एक हैं। ठीक जैसे चीन को भारत ने बोधिधर्म दिए, भारत ने तिब्बत को अतीशा दिए। तिब्बत इस व्यक्ति के लिए अनंत रूप से ऋणी है।

बोधि पथ प्रदीप विश्व के सबसे छोटे ग्रंथों में से एक है, और इसके सूत्र बहुत मूल्यवान हैं। पूरा धर्म जैसे उनमें सघनीभूत कर दिया गया है। वे बीजों की तरह हैं, और अपने आप में बहुत कुछ छिपाए हुए हैं। यदि तुम उनमें उतरो और उन पर प्रयोग करो, तो तुम अपने जीवन के महानंतम अभियान पर निकल जाओगे।

दि बुक ऑफ विज़डम



With Love & Gratitude
Swami Dhyan Vibodh
Dehradun

कह दें अलविदा

उस पुरानी दुनिया को

विश्व अभी से आतुर हो रहा है इस लॉक डाउन से बाहर आने के लिए लेकिन इसे एक बड़े परिवर्तन के साथ बाहर आना होगा।

यदि यह विश्व फिर से पुराने मन और पुरानी मनुष्यता के रास्तों पर चलते हुए पुनः प्रारंभ होता है तो एक महाविनाश होगा।



लॉकडाउन के दू

आसपास के वृक्षों पर पक्षियों की चहचहाहट अभूतपूर्व रूप से बढ़ गई। प्रकृति का मधुर संगीत फिर से बजने लगा। काले और सफेद रंग की रोबिन बैठी है और अपनी मीठी तान सुना रही है। कहीं पपीहे की पियू-पियू तो कहीं कोयल की कूह-कूह शहरों को छोड़ दिया था फिर से लौट रही है।

ने लगी।

सुनसान समुद्रतटों पर डॉल्फिन मछलियां करती दिखायी दे रही हैं जो मनुष्यों के डर से किनारे पर नहीं आती थीं। विश्व भर से समाचार आ रहे हैं जंगली जानवर शहरों की सड़कों पर घूमते दिखाई दे रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मनुष्यों की अनुपस्थिति में वे देखने आ रहे हैं कि उनके पूर्वज कहां रहते थे।

यह कस्बे, यह नगर, यह रास्ते कभी जंगल हुआ करते थे जिन्हें

काट-काट कर हमने अपनी बस्तियों में बदल दिया। और खदेड़ दिया यहां के निवासियों को। सीमित क्षेत्रों में, वहां भी हम उन्हें चैन से नहीं रहने देते। उनका शिकार किया जाता है, उनके बच्चों को नष्ट किया जाता है। उनके घर के बीचों-बीच से राजमार्ग निकाले जाते हैं। लेकिन प्रकृति के अपने नियम हैं जिनके अनुसार हम सब का जीवन संचालित होता है। पिछले कुछ दशकों में हमने प्रकृति पर कठोर आधात किये हैं। जिससे इसका संपूर्ण संतुलन खतरे में पड़ गया है। कोरोना वायरस मात्र एक अंतिम चेतावनी है मनुष्यता के लिए कि हम अपनी मौजूदा जीवन-शैली को त्याग कर एक प्रेममयी जीवन-शैली का चुनाव करें। अब अपनी पुरानी दुनिया में लौटने का, उसी विनाशकारी ढर्ठे पर चलने का अर्थ होगा संपूर्ण अंत। अभी प्रकृति स्वयं को पुनः स्वस्थ करने में लगी है। इस धरती पर मात्र मनुष्य ही नहीं रहते और भी प्राणी हैं जिन्हें शुद्ध जलवायु और सुरक्षित आश्रय चाहिए।

4 अप्रैल 2020 को जब जालधंर के निवासी सुबह-सुबह उठे तो एक अद्भुत नजारा था। दू
खला स्पष्ट
दिखाई दे रही थी। यह पर्वत जालधंर से 213 किलोमीटर की दू
हें। जालधंर के पुराने निवासियों के अनुसार यह दृष्टि 30 वर्ष पूर्व एक दैनिक घटना थी। हमारे कारखानों, कारों, ट्रकों, रेलगाड़ियों, बसों, हवाई जहाजों से निकले जहरीले धूएं की घनी चादर में छुप गया था यह खूबसूरत नजारा।

आज रात के आसमान पर नजर डालें चांद कुछ धुला-धुला-सा दिखता है। हमारी फैलाई धुंध के छंटते ही तारे मुस्कराने लगे हैं और हवा में एक सहज-स्फूर्त कर देने वाली ताजगी आने लगी है। हमारे महानगरों में प्रदू

इस महामारी के चलते एक महत्वपूर्ण तथ्य और उभर रहा है जिसका संबंध स्त्रियों से है। 20 देशों से आए आंकड़ों के अनुसार स्त्रियों और पुरुषों में कोरोना से मरने वालों की संख्या में बड़ा अंतर है।

इटली में जहां 70 प्रतिशत मरने वाले पुरुष और 30 प्रतिशत महिलाएं हैं, चीन में यह आंकड़ा 64 प्रतिशत पुरुष और 36 प्रतिशत महिलाओं का है। सभी देशों में लगभग यही आंकड़े सामने आ रहे हैं जो बताते हैं कि स्त्रियों में रोगों से लड़ने की क्षमता अधिक है, वह पुरुषों से कहीं अधिक मजबूत और हिम्मतवर हैं।

आइये, अब उन देशों पर नजर डालें जहां की बागडोर स्त्रियों के हाथ में हैं। सिट मार्टेन नाम का एक छोटा-सा देश है जिसमें रहने वालों

की संख्या मात्र 41500 हैं। यह एक छोटा-सा द्वीप-देश है जहां प्रति वर्ष 500000 सैलानी आते हैं। इसकी प्रधानमंत्री हैं 51 वर्षीया सिल्वेरिया जैकब्स। जैसे ही विश्व में कोरोना का संकट फैलने लगा उन्होंने सारे सैलानियों को 11 दिवस का समय दिया देश छोड़ कर जाने के लिए और देशवासियों को अपने घर लौटने के लिए। 29 मार्च को वहां लॉक डाउन लगा दिया गया। कुछ सैलानियों के कारण वहां कोरोना आया, लेकिन आज भी उनकी संख्या 74 है और वहां 13 मौते हुई हैं।

न्यूजीलैंड की प्रधानमंत्री आर्डेन 39 वर्ष की आयु में सबसे युवा नेता हैं। उन्होंने अपने देशवासियों को लॉकडाउन से पहले 2 सप्ताह का समय दिया सारी तैयारी के लिए। उनका संदेश था—एक संवेदनशील लॉकडाउन। आज न्यूजीलैंड में 1122 कोरोना के मामले हैं और मात्र 19 मौते हुई हैं।

र्जनी की चांसलर ऐजेंला मार्केल, डेनमार्क की फ्रेडरिक्सन, ताईवान की प्रमुख साई-ईंग-वेन के नेतृत्व में इन देशों में कोरोना मामलों के कारण निम्नतम मौतें हुई हैं।

इस पुरुष प्रधान विश्व में महिलाएं अपनी शक्ति का अहसास दिला रही हैं। यह अवसर है उन्हें उनका स्थान देने का। उनकी शक्ति को पहचानने का। इस महामारी को रोकने के लिए सशक्त कदम चाहिए लेकिन एक संवेदनशील हृदय भी आवश्यक है।

विश्व अभी से आतुर हो रहा है इस लॉक डाउन से बाहर आने के लिए लेकिन इसे एक बड़े परिवर्तन के साथ बाहर आना होगा। यदि यह विश्व फिर से पुराने मन और पुरानी मनुष्यता के रास्तों पर चलते हुए पुनः प्रारंभ होता है तो एक महाविनाश होगा।

आज हमारे पास अवसर है क्योंकि सब कुछ बंद है और प्रकृति हमें संदेश दे चुकी है—जो कदम हमने भूत में कभी नहीं उठाए थे अचानक इस घटना के कारण उठाने पड़े हैं। हमें अब ज्ञात है कि क्या-क्या करने से इस धरती के पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है। यदि मात्र ही कुछ दिनों की तालाबंदी से यह धरती इतनी स्वस्थ हो सकती है तब लंबे समय तक के लिए उठाए गए कदम इस धरती को एक खुशहाल ग्रह में रूपांतरित कर सकते हैं।

इस स्तंभ के माध्यम से हम चेताते आएं हैं कि मनुष्यता एक जागतिक आत्महत्या की ओर तेज गति से बढ़ रही है। एक स्वर्णिम अवसर है यह अपनी सारी भूलें सुधारने का। इसके पश्चात हमारे पास न अवसर होगा न कोई चुनाव।



मृत्यु से पहले, मृत्यु की तैयारी

तब भी जब मृत्यु निश्चित होकर सामने आ खड़ी हो
और तब भी जब हम जीवन में निश्चित हों

मृत्यु हमारे जीवन की एकमात्र निश्चित घटना है लेकिन हमेशा हमें वह और्तों के साथ ही घटती मालूम होती है, अपनी मृत्यु की ओर कभी ध्यान नहीं जाता। मगर कई बार ऐसा होता है कि किसी लीभारी के रूप में मृत्यु हमारे सामने एक निश्चितता की तरह आ खड़ी होती है और हम पाते हैं कि हम उसके लिये तैयार नहीं हैं। ओशो बारदो ध्यान की चर्चियेता मा प्रेम मनीषा इस साक्षात्कार में बता रही हैं कि वह किस प्रकार ऐसे लोगों को ध्यान के अनुभव से एक रस्वीकार भाव के साथ मृत्यु में जाने के लिये तैयार करती हैं।

साथ ही वह साझा कर रही हैं ओशो की यह अंतर्दृष्टि—कि इस तैयारी को मृत्यु के समय के लिये ही क्यों टालना? क्यों न हम ऐसा जीवन जियें कि अंत समय में इस तैयारी की जरूरत ही न पड़े?

मनीषा पैंतालीस वर्षों से ओशो के साथ हैं और उनका काम रहा है ओशो के शब्दों को संग्रहीत करना—ओशो ने एक बार किसी प्रवचन में उनसे कहा भी था कि जब हम सब जा चुके होंगे तब भी हजारों वर्षों तक तेरे संग्रह किए हुए शब्द पढ़े जाते रहेंगे।

ओशो के साथ इस पूरे समय रहते हुए मनीषा ने जो कुछ पीया है, जो कुछ जीया है उसे वह एक अद्भुत अंदाज में लोगों के साथ बांट रही हैं। आजकल वह पश्चिम में उन लोगों पर काम करती है जिनकी मृत्यु करीब हो, और ऐसे लोगों के संबंधियों और मित्रों पर भी। तो उनका काम दोहरा है—एक, तो यह कि मरता हुआ व्यक्ति अपनी मृत्यु के तथ्य को स्वीकार कर सके और पीछे के सब बंधन तोड़ सके और दूसरे यह कि उसके आसपास के लोग विषाद से बाहर आकर मृत्यु के सौंदर्य को देख सकें।

मनीषा बताने लगीं: ‘सिग्मंड फ्रायड की सबसे छोटी बेटी अन्ना फ्रायड की मृत्यु के समय मैं वहां मौजूद थी। वातावरण बड़ा बोझिल था, सभी बड़े तनाव में थे। अचानक मैंने वहां ओशो के बारे में बात करनी शुरू कर दी और सबको ऐसा लगा कि जैसे हवा में गुलाबजल छिड़क दिया गया हो—सभी एकदम से हल्के हो गए। अन्ना फ्रायड भी मुस्कराती हुई विदा हुई। मैंने जब ओशो से पूछा कि क्या यह उनके नाम का चमत्कार था, तो उन्होंने कहा कि नहीं यह उनके नाम का नहीं उस प्रेम और श्रद्धा का चमत्कार था जिससे भरकर मैंने उनका नाम लिया। उन्होंने कहा कि यदि कोई ध्यानी व्यक्ति मरते हुए व्यक्ति के पास मौजूद हो तो मरते हुए व्यक्ति को भी ध्यान

की पगड़ंडी पर चला सकता है। बस तभी से मेरे इस काम की शुरुआत हो गई। और मैं लोगों को बता भी देती हूँ कि मैं कोई थेरेपिस्ट नहीं हूँ बस ध्यान की एक साधिका हूँ भव हैं उन्हें मैं तुम्हारे साथ बांटने के लिए तैयार हूँ

लेकिन किसी को पूरे जीवन भर ध्यान का कोई अनुभव ही न रहा हो, कभी उस स्वाद को चखा ही न हो उसने तो आखिरी क्षण में जब सब कुछ बुझ ही चला—कैसे कोई व्यक्ति एकदम से इस नई अनजानी राह पर निकल सकता है?

‘नहीं,’ मनीषा बोलीं, ‘ऐसा नहीं है कि मरने से पहले सब कुछ बुझ ही चला होता है। बुझने से पहले तो लौ एक बार भभक कर जलती है न! उस समय अंधकार का, अकेलेपन का और सब कुछ छूट जाने का ऐसा भय पकड़ता है कि व्यक्ति छटपटाकर किसी भी सहारे को पकड़ने की कोशिश करता है—ऐसे में यह बहुत आसान है उसे समझ में आ जाना कि सहारा तो कोई संभव ही नहीं है, और सहारे का न होना कोई दीन-हीन स्थिति नहीं है, यह तो व्यक्ति की शान है कि उसे अकेले आगे जाना है।

‘मरने के समय व्यक्ति की अपने प्रति जो बहुत सारी धारणाएं होती हैं वे भी टूटती हैं—कि वह सिविल इंजीनियर है, कि वह डाक्टर है, कि उसके नीचे इतने लोग काम करते हैं। व्यक्ति ने चाहे जितनी सफलता जीवन भर पाई हो लेकिन वह सफलता इस समय उसे मृत्यु के सामने असहाय होने से तो नहीं बचा सकती, इसलिए वह सारी सफलताएं-असफलताएं उसे व्यर्थ नजर आने लगती हैं।

‘तो सारा जीवन एक तरफ, और मृत्यु के क्षण एक तरफ। मृत्यु के समय की जो सघनता है उसमें व्यक्ति बड़ी सरलता से ध्यान में उत्तर सकता है।’

क्या ध्यान की कोई विशेष विधियाँ हैं, जो आप इन अवसरों पर उपयोग करती हैं?

‘दो विधियाँ हैं। एक तो मैंने श्वास से संबंधी उन सभी विधियों को मिलाकर विकसित की है जो ओशो ने विज्ञान भैरव तंत्र में कही हैं, और दूसरी है ओशो के नादब्रह्म ध्यान की विधि।

‘श्वास वाली जो विधि है उसे मैंने दो हिस्सों में बांटा है। पहले हिस्से में सिर्फ भीतर आती हुई सांस को देखना है, और कुछ भी नहीं करना—सांस नासापुटों से होती हुई भीतर गई, गहरे उतरी...। सिर्फ इसी को ही देखना है। ऐसा दस मिनट चलेगा। फिर अगले दस मिनट तक सिर्फ बाहर जाती हुई सांस को देखना है कि कैसे पूरा शरीर धीरे-धीरे सिकुड़ता है और सांस बाहर निकलती है फिर से नासापुटों को छूती

हुई। अंतिम दस मिनट में सांस के आने और जाने के पूरे चक्र को देखना है। इस विधि में जब हम पहले सिर्फ सांस के भीतर आने को देखते हैं और फिर सिर्फ बाहर जाने को देखते हैं, और फिर जब पूरे चक्र को देखना शुरू होता है तो बीच के जो गैप हैं वे बड़ी आसानी से पकड़ में आने लगते हैं, क्योंकि जब हमने सांस के साथ वहां तक की यात्रा की जहां तक उसने भीतर आकर छुआ तो हम भी वहां पर ही रुक गए, और जब हम वापस उसके साथ चलने लगे तो वहां से चले जहां से सांस ने लौटना शुरू किया—और इन दोनों बिंदुओं के साथ हमारा परिचय बन गया। फिर जब श्वास और प्रश्वास के चक्र के साथ हम चलते हैं तो हमारे दो परिचित बिंदुओं के बीच जो अपरिचित गैप है उसके प्रति हम अचानक जाग उठते हैं। और इस गैप, इस खालीपन को देख लेना ही ध्यान है।

‘इस विधि के दूसरे हिस्से में फिर मैं सुझाव देना शुरू करती हूँ पहले दस मिनट जब भीतर जाती हुई सांस को देखना है मैं व्यक्ति को यह महसूस करने को कहती हूँ में समा रहा है, उसका पूरा शरीर जीवन को पी रहा है। और फिर जब सांस बाहर की ओर जाने लगती है तो यह महसूस करने को कहती हूँ कि जीवन भी बाहर निकल रहा है। शरीर का एक-एक तंतु शिथिल हो रहा है और जीवन को छोड़ रहा है। और जब मैं देखती हूँ इस सुझाव के प्रति स्वीकार आ गया है तो मैं उसे कहती हूँ का अनुभव है—एक-एक तंतु शिथिल पड़ चुका, पूरा जीवन बाहर जा चुका। और अचानक वह गैप आ जाता है जहां न जीवन है न मृत्यु। अपनी शाश्वतता का बहुत छोटा सा स्वाद...।’

‘यह विधि दो काम करती है। एक तो यह कि व्यक्ति देखने की कला सीख जाता है। ओशो कहते हैं न कि सांस के सहारे साक्षी होना सबसे सरल है—वह सदा चल रही है। आदमी बिस्तर पर भी लेटा हो, कोई और पास में मौजूद हो कि न हो सांस तो चलेगी ही। और दूसरी बात यह कि व्यक्ति को छोटा सा स्वाद मिलता है मृत्यु और जीवन के जुड़े होने का। जैसे सागर की लहरें आपस में स्पंदित होती हैं,’ मनीषा की आंखें मुंद चुकी थीं और हाथ आगे-पीछे जाते हुए सागर की लहरों को मुद्रित कर रहे थे। ‘ऐसे ही जीवन मृत्यु में और मृत्यु जीवन में आकर मिलती रहती है। तो मृत्यु के प्रति एक सहज-स्वीकार पैदा हो जाता है। फिर व्यक्ति मृत्यु को भी ऐसे ही देख पाएगा जितनी सहजता से उसने बाहर जाती हुई सांस को देखा।

‘और दूसरी जो नादब्रह्म की विधि है, उसके बारे में ओशो ने बताया है कि वह व्यक्ति के अंदर एक हारमनी, एक लय पैदा करती है और उस लय के भीतर ठहराव के बिंदु को पकड़ लेना बहुत सरल है। लेकिन इस विधि के लिए व्यक्ति का इतना स्वस्थ होना जरूरी है कि वह आराम

से बैठ सके और हू

मनीषा की यह बात तो समझ में आई कि मृत्यु के क्षणों में व्यक्ति का जीवन पूरी सधनता में और त्वरा के साथ उभरता है, इसलिए इन क्षणों में ध्यान बहुत सरल है। लेकिन इन्ही क्षणों में तो जीवन भर की वासनाएं और इच्छाएं भी अपने पूरे वेग के साथ सिर उठाती हैं। उनका क्या ?

‘हां, यह बात बिलकुल ठीक है। ओशो कहते हैं न कि हमारी वासनाएं ही दोबारा जन्म लेती हैं। मृत्यु के समय ऐसा लगता है कि जैसे बहुत कुछ अधूरा छूट गया। और उस अधूरे को पूरा करने के लिए ही व्यक्ति तत्काल दूसरे गर्भ में प्रवेश कर जाता है।

‘तो इस समय में यह जरूरी है कि उसके भीतर की जो पुरानी दबी हुई स्मृतियां हैं—अच्छे समय की भी और बुरे समय की भी—उन्हें कुरेद कर बाहर निकाला जाए। इसके लिए चाहे तो परिवार के सब सदस्य, सब मित्र उसके आसपास इकट्ठे हो जाएं और पुरानी फोटो एलबम देखने लगें। व्यक्ति अपने पुराने संबंधों को, पुरानी घटनाओं को एक बार फिर से जीने की कोशिश करे तो उसे पता होगा कि पछिली बार उसमें क्या-क्या अधूरा छूट गया था। क्योंकि जब कभी भी कुछ अधूरा छूटा होगा, व्यक्ति ने कई बार उसके बारे में सोचा होगा कि काश ऐसा होने की जगह वैसा हुआ होता तो शायद उस संबंध में, उस घटना में कुछ अधूरा न छूटता। अब जब प्रियजनों के साथ बैठकर वह फिर से उन क्षणों को जी रहा है तो वह उन्हें ऐसे ही जी सकता है जैसा वह चाहता है। और उसके मित्र इसमें उसकी मदद कर सकते हैं। जैसे कि कोई उसे याद दिलाए—तुम्हें याद है जब हम वहां गए थे तो क्या हुआ था। तब तुमने मुझसे क्या कहा था...।

‘बहुत सी बातें जो हम किसी के साथ करना चाहते थे, बहुत से मामले जो हम सुलझाना चाहते थे, वे भी अगर पूरे कर लिए जाएं तो व्यक्ति को अकेले होकर अपनी यात्रा पर निकलने में बड़ी सुविधा हो सकती है। तो इसमें मैं क्या करती हू

प्रियजन के साथ कोई बात सुलझाना चाहता है तो पहले मैं कोशिश करती हू

तो किसी गुड़िया, या कोई भी ऐसी चीज को मैं उसके सामने रख देती हू

जब हम अपनी भावनाओं को अचेतन में से निकालकर शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं तो बहुत सारी सफाई अपने आप ही हो जाती है।

यह जरूरी नहीं है कि तुम जिससे कुछ कहना चाहते हो उसने सुना कि नहीं, महत्वपूर्ण यह है कि तुमने जो कहना था वह कहा कि नहीं। तुम वह बात हवा में ही कह दो—तुम हलके हो गए।

‘और फिर दूसरी छोटी-छोटी चीजें हैं। कोई अपना मनपसंद भोजन

करना चाहता है, अपनी मनपसंद पोशाक पहनना चाहता है—ये छोटी-छोटी चीजें उसे उपलब्ध करवा दी जाएं तो भी उसके लिए बहुत सहयोगी होगा। और यह काम तो मित्रों को, प्रियजनों को करना पड़ेगा।

‘ये सब छोटी-छोटी चीजें हैं लेकिन व्यक्ति को इस भाव से बाहर ले आती हैं कि जीवन में बहुत सी चीजें अधूरा छूट गयी हैं। यह चीजों के अधूरे छूट जाने का भाव ही है जो व्यक्ति को मृत्यु में स्वीकार भाव से जाने से रोकता है। जैसे ही यह भाव विदा होता है एक स्वीकार आ जाता है, और पीछे कोई अटकाव नहीं रहता। मृत्यु एक शांत और सुंदर घटना हो जाती है।

‘एक बात और—जो व्यक्ति मर रहा है, उसके प्रियजनों को भी एक तैयारी की जरूरत होती है क्योंकि वे भी एक पीड़ा से गुजरते हैं। जब हमारे किसी प्रियजन की मृत्यु होती है तो वास्तव में हम उसकी मृत्यु के कारण दुखी नहीं होते, उसके चले जाने के कारण हमारे भीतर जो जगह खाली होती है उसके कारण हम दुखी होते हैं। तो यदि वह खाली जगह हम पहले ही अपने भीतर बना लें और उसकी खूबसूरती को भी पहचान लें तो प्रियजन की मृत्यु ध्यान का एक क्षण बन सकती है।

‘इसके लिए एक ध्यान की विधि है। अपने माथे पर हलके से हाथ रख लें, जैसे पंख छू रहा हो। जिस बिंदु पर हाथ की उंगलियों का स्पर्श हो उसे महसूस करें, वहां उंगलियों के हलके से कंपन को महसूस करें। धीरे-धीरे सिर विदा होने लगेगा और सिर्फ आकाश बचेगा,’ मनीषा की आंखें फिर मुंद गईं और आवाज जैसे किसी गहरे कुएं से निकलने लगी। ‘फिर इस आकाश को नीचे उतरने दें—गले तक, हृदय तक, हारा तक। और धीरे-धीरे महसूस होने लगेगा कि शरीर की सभी सीमाएं मिट गईं और हम बिलकुल खाली हो गए।’

यह तैयारी तो हुई उन लोगों के लिये जिनकी मृत्यु निश्चित होकर सामने आ खड़ी हुई है। लेकिन देर या सबेर तो हम सभी की मृत्यु निश्चित ही है। क्या सबको ही यह तैयारी नहीं करनी चाहिये?

‘यही तो ओशो हमें लगातार सिखा रहे हैं कि मृत्यु हमारे जीवन की एकमात्र निश्चित घटना है और हम उसके लिये कोई तैयारी नहीं करते। लेकिन मृत्यु की तैयारी से ओशो का यह अर्थ नहीं है कि हम सतत उसका समरण करते हुए भयभीत होकर जीने लगें। हम इस तरह जियें कि जिस क्षण में हम हैं बस वही क्षण हमारे हाथों में है, उसे हम समग्रता से उसका परिपूर्णता में ऐसे जियें कि उसमें कुछ भी अधूरा न छूट जाये। हमारे छोटे से छोटे कृत्य को हम एक महान उत्सव की तरह करें, अपने चित्त पर भावनात्मक स्मृतियों का कोई बोझ इकट्ठा न करें—ऐसे कोई भाव बोझ बनकर इकट्ठे होते प्रतीत हों तो या तो ध्यान में उनका रेचन कर लें या उनके साक्षी होकर उन्हें विसर्जित होने दें। तब जीवन भी एक सुंदर घटना

महामारी में भी उत्सव !

कोई कितना प्रौढ़ है, परिपक्व है, प्रतिभावान है, संवदेनशील है इसका पता कठिन समय में चलता है। जब सब कुछ अच्छा चल रहा हो, सामान्य चल रहा हो, ठीक समय चल रहा हो तो सकारात्मक होना, मौज करना बहुत आसान होता है तब न तो किसी विशेष परिपक्ता की जरूरत पड़ती है न प्रतिभा की...।

एक बार ओशो से किसी ने बोला, ‘बहुत आनंदित हू भरा हू

‘अभी सब अच्छा चल रहा है तो मन की यह दशा है...कोई भी कठिन परिस्थिति आ जाए तो यह सब भूल जाओगे। अभी गर्ल फ्रेंड ही छोड़कर चली जाये तो जार-जार रोने लगोगे, भूल जाओगे सब अहोभाव व प्रेम।’ बात तो तब होती है जब कोई साथ हो तो और कोई साथ न हो तो मन स्वस्थ रह सके, संतुलित रह सके।

कोरोना वायरस के प्रकोप ने अच्छे-से साबित कर दिया कि मानवता कितनी भयभीत है, कमज़ोर है। जिसे देखो वही चिंतित, कंपता हुआ—हर देश डरा हुआ। समुद्र किनारे धूप सेंकते बेफिक्र समूह, पब व गैरह में तेज संगीत पर नाचता समूह, पार्टीयां, खाना-पीना, भ्रमण, रिति-रीवाज में पूरी तरह से डूबा हुआ समूह...कभी एक क्षण को भी किसी समूह ने सोचा था कि पूरी पृथ्वी का इंसान यूं अपने-अपने घरों में दुबक कर बैठ जायेगा?

और क्या किसी देश को, किसी समूह को देखकर लगता है कि जरा-सी समझ भी है, प्रौढ़ता भी है? कोई एक समूह है जो सच में प्रकृति के इस अंदाज को सहजता से स्वीकार रहा हो? नहीं।

इस भय की मानसिकता के मूल में जायें तो एक ही कारण नजर आता है—मौत को भुला देना। पूरी तरह से भुला देना। हर आदमी यूं जीता है जैसे कि मौत तो कभी आयेगी ही नहीं। जब मौत को भुला दिया जायेगा और किन्हीं परिस्थितियों में मौत पूरी मानवता के द्वार पर इतनी जोर से दस्तक देगी तो भूचाल तो आना तय है। अब घबराओ, अब अवसाद में जाओ, अब हर तरह का बहाना ढूँढो कि सब ठीक हो जायेगा, लेकिन कैसे? संक्रमित मरीजों के आंकड़े रोज बढ़ रहे हैं, मौत के आंकड़े रोज बढ़ रहे हैं...तेज गति से मौत हर घर, हर व्यक्ति के द्वार पर दस्तक दे रही...संचार माध्यम, सोशल मीडिया हर सैकंड पूरी दुनिया की खबरें दे रहे हैं। मौत के कदमों की आवाज के अलावा अब कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा...।

मौत के कदम तो जन्म के साथ ही आने लगते हैं, लेकिन इतने धीमे, इतने हौले-हौले, बस फुसफुसाहट, जिसे इंसान बड़ी चालाकी से अनस-उना करता जाता है। दौड़-भाग, ईर्ष्या-द्वेष, शादी-व्याह, काम-धंधे,

महत्वाकांक्षाएं, लालसाएं...ऐसा हल्ला मचाता है कि मौत की आहट सुनाई तक नहीं देती और किसी दिन आ भी जाती है तो सिवाय मरने वाले के किसी को अहसास तक नहीं होता। लेकिन अब तो अहसास सभी को हो रहा है, सिर्फ और सिर्फ अहसास हो रहा है। मौत इस बार ढोल-नगाड़े लेकर आ गई। अब तक इंसान ने अपने हो-हल्ले से मौत की आवाज दबा दी...इस बार मौत ने इंसान की आवाज को दबा दिया...अरबों लोग, कोने-कातरों में दबे-छुपे...हर पल मौत की आवाज सुन रहे। कितने ही कानों पर हाथ रख लो...आवाज तो सुनाई दे रही है—हर दिन, हर रात, हर पल।

ओशो बार-बार याद दिलाते हैं कि मौत आती है, आ रही है, इसके पहले कि मौत आये, अमृत का स्वाद ले लो। हम यदि यह सुन और समझ पायें तो कोई महामारी हमारे जीवन के उत्सव को कंपा नहीं सकती, बल्कि वह उसे और सघन करेगी क्योंकि मृत्यु से पहले अमृत को जान लेने का संदेश और गहन हो जायेगा।

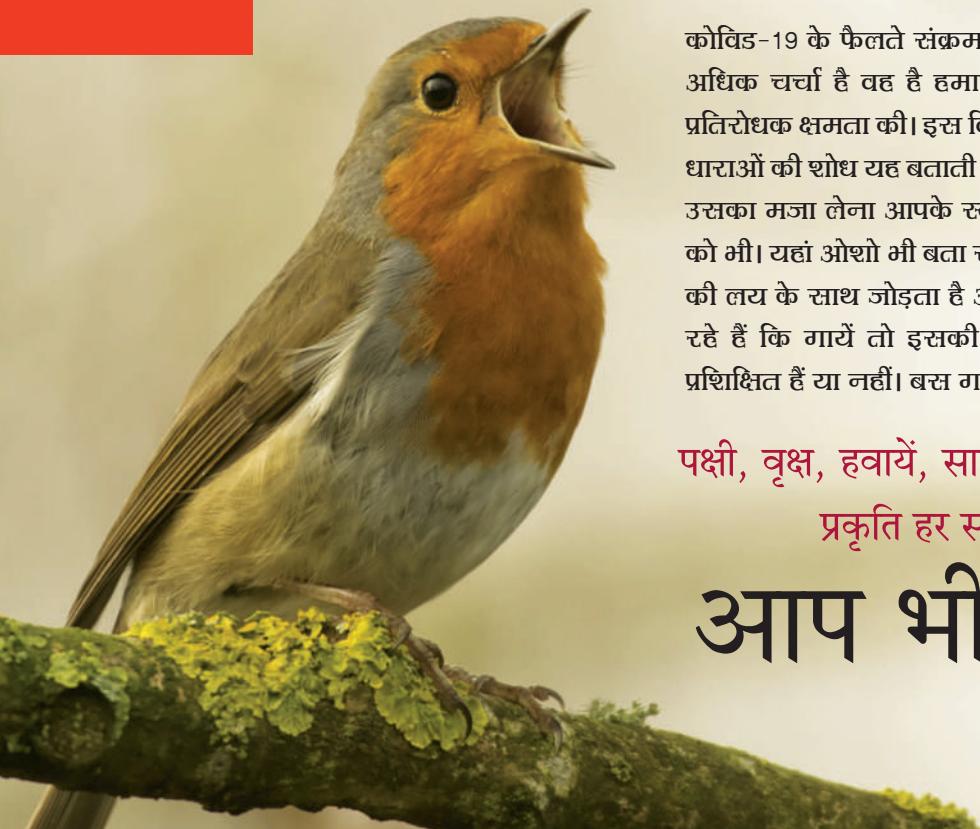
अब भी समय है—कोई जरूरत नहीं भयभीत होने की, ध्यान अब भी किया जा सकता है। जब मौत इतनी करीब हो तो ध्यान की त्वरा भी बहुत हो सकती है, तब रूपांतरण बहुत आसान हो जाता है, ऐसा हो जाये तो फिर मौत का भी स्वागत ही होगा, कोरोना भयभीत नहीं करेगा।

अगर ऐसा हो सके तो यह पृथ्वी एक उच्चतर तल पर जा सकती है, मानवता अधिक आनंदित हो सकती है। अधिक समझदार हो सकती है।

अवसर तो बड़ा आया है—देखना है कि इस अवसर का सदुपयोग कर इंसान पृथ्वी को स्वर्ग बनाता है या नक्क।

ओशो कहते हैं :

मेरे देखे तो ऐसी कोई परिस्थिति है ही नहीं जिसमें उत्सव संभव न हो। मृत्यु के क्षण में जब सब छूट रहा हो, तब भी उत्सव संभव है तो फिर भला ऐसी कौनसी परिस्थिति हो सकती है जब उत्सव संभव न हो? तुम्हें यह समझने में कठिनाई हो सकती है क्योंकि तुम उत्सव के बाह्य रूप को ही जानते हो—कि उत्सव का अर्थ है नृत्य, कि गीत, कि दीये, कि वंदनबार। किन्हीं परिस्थितियों में हो सकता है कि यह सब संभव न हो। लेकिन तुम्हें जो मिला है उसके लिये अस्तित्व के प्रति तुम्हारा हृदय अहोभाव से सराबोर हो—न मिलता तो भी तुम क्या कर सकते थे—वह अहोभाव एक उत्सव है। जब तुम्हारा हृदय जो कुछ भी है उसके लिये स्वीकारभाव से भरा हो, तो वह उत्सव है।



कोविड-19 के फैलते संक्रमण में रवास्थ्य को लेकर जो सबसे अधिक चर्चा है वह है हमारे शारीर की इम्यूनिटी की, रोग-प्रतिरोधक क्षमता की। इस विषय में वैकल्पिक चिकित्सा की कुछ धाराओं की शोध यह बताती है कि उन्मुक्त होकर गीत गाना और उसका मजा लेना आपके रवास्थ्य को बढ़ाता है और इम्यूनिटी को भी। यहाँ ओशो भी बता रहे हैं कि कैसे गीत गाना हमें प्रकृति की लाय के साथ जोड़ता है और रवास्थ्य देता है। वे यह भी कह रहे हैं कि गायें तो इसकी परवाह न करें कि गीत गाने में प्रशिक्षित हैं या नहीं। बस गायें और आनंदित व रवास्थ हों।

**पक्षी, वृक्ष, हवायें, सागर, नदियां, झरने, झिंगुर—
प्रकृति हर समय हर तरफ गीत गा रही है**

आप भी गायें और स्वस्थ रहें

जीवन को अगर तुम गौर से देखोगे तो अस्तित्व में जो सबसे ज्यादा प्रकट बात दिखायी पड़ती है, वह है गीत। पक्षी अभी भी गा रहे हैं। सुबह होते ही गीत पक्षियों का शुरू हो जाता है। हवाओं के झोंके वृक्षों से टकराते हैं और गाते हैं। पहाड़ों से झरने गिरते हैं और नाद उत्पन्न होता है। आकाश में बादल आते हैं और तुमुल-उदघोष होता है। नदियां बहती हैं। सागर की तरंगें टटों से टकराती हैं। अगर जीवन को चारों तरफ गौर से तुम देखो और सुनो, तो तुम्हें पूरा अस्तित्व गाता हुआ मालूम पड़ेगा।

गीत से ज्यादा स्पष्ट अस्तित्व में और कोई बात नहीं है। सिर्फ जब जीवन शांत हो जाता है, मृत हो जाता है, तभी गीत बंद होता है। जब कोई मर जाता है, तभी ध्वनि खोती है। अन्यथा जीवन में तो ध्वनि है। लेकिन आदमी बहरा है। इसलिए साफ धागा हाथ में होते हुए भी पकड़ में नहीं आता।

अगर जीवन इतना गीत से भरा है, तो इस गीत के पीछे परमात्मा का हाथ होगा। और इस गीत में छिपा हुआ कहीं न कहीं परमात्मा है। अगर हम भी गा सकें, अगर हम भी इस गीत में लीन हो सकें, तो धागा हाथ में आ जाएगा। गीत में लीन होना धागा है।

जब कभी तुम गाते हो, तब एक मस्ती पकड़ने लगती है। तब एक नशा छाने लगता है। लेकिन लोग गाने से डर गए हैं। कोई पक्षी इसकी चिंता नहीं करता है कि उसकी ध्वनि मधुर है या नहीं; आदमी बहुत भयातुर हो गया है। थोड़े-से लोग गा सकते हैं, जिनकी ध्वनि बहुत मधुर हो। बाकी लोग ज्यादा से ज्यादा स्नानगृह में थोड़ा गुनगुनाते हैं।

वह भी डरे-डरे! स्नानगृह में गुनगुनाते हैं, क्योंकि कोई देखने वाला नहीं, कोई सुनने वाला नहीं। और ध्यान रखना, स्नान से भी तुम्हें उतनी ताजगी नहीं मिलती, जितनी गुनगुनाने से मिलती है। क्योंकि स्नान तो शरीर को ऊपर-ऊपर ही छूता है, गुनगुनाहट भीतर उतर जाती है। और जो आदमी गुनगुनाना नहीं जानता, उस आदमी के सभी संबंध परमात्मा से टूट गए। वह अस्तित्व से दूर हो गया, वह जीते जी मुर्दा है।

यह सवाल नहीं है कि स्वर मधुर है या नहीं। क्योंकि गीत कोई बाजार में बेचने के लिए नहीं है, गीत तो अहोभाव के लिए है। और गीत की असली सार्थकता उसके माधुर्य में नहीं, उसकी लीनता में है। तुम उसमें लीन हो सकते हो। तुम उसमें इतने लीन हो सकते हो कि तुम बिलकुल मिट ही जाओ। तुम बचो ही न और गीत ही बचे। गुनगुनाहट रह जाए और कर्ता खो जाए। गीत ही बचे और गायक समाप्त हो जाए। यह हो सकता है। और यह सरलतम है। इससे ज्यादा सरल धागा तुम न पा सकोगे। पक्षी गा लेते हैं, पौधे गुनगुनाते हैं, झरने गाते हैं। तुम इतने असर्वार्थ हो क्या कि झरनों का मुकाबला भी न कर सको? कि पक्षियों का मुकाबला भी न कर सको? कि वृक्षों से भी होड़ न ले सको?

लेकिन तुम डर गए हो। और तुमने गीत को बाजार में खड़ा कर दिया है। तुम गीत को बेचते हो। और फिर एक मजेदार घटना घटी है कि जब गीत बिकता है, तो सभी नहीं गा सकते। क्योंकि तब गीत जीवन

का सहज कृत्य नहीं रह जाता। बाजार की सामग्री हो गयी। फिर तुम सोचोगे कि ध्वनि योग्य है या नहीं! शिक्षण हुआ या नहीं! तुमने संगीत सीखा है या नहीं!

कोई पक्षी संगीत सीखने नहीं जाता। कोई झरना संगीत सीखने नहीं जाता। संगीत तो जीवन की सहज सरिता है। सीखने का कोई सवाल नहीं। संगीत तो वहां अनसीखा मौजूद है। सिर्फ थोड़ी हिम्मत जुटाने की जरूरत है। थोड़े पागल होने की हिम्मत चाहिए और संगीत फूट पड़ेगा। और जब पक्षी विश्वविद्यालय में नहीं जाते, तो तुम्हें जाने की क्या जरूरत है? लेकिन पक्षियों को चिंता नहीं है कि कौन क्या कहता है? पक्षियों को विचार नहीं है कि बाजार में बिकेगा यह गीत या नहीं? पक्षी आनंद से गाते हैं।

चूंकि हम बेचते हैं गीत को, धीरे-धीरे एक दूसरी दुर्घटना घटती है। और वह यह कि फिर हम गा तो नहीं सकते, हम सिर्फ सुन सकते हैं। तब कोई गाता है और हम सुनते हैं, कोई नाचता है और हम देखते हैं। तुम सोचो जरा, यह बड़ी दीनता है। किसी दिन ऐसा जरूर आ जाएगा, जब कोई प्रसन्न होगा, हम देखेंगे।

तुम फर्क समझते हो? कोई प्रसन्न होता है, तुम देखते हो—इसमें, और तुम प्रसन्न होते हो—अंतर दिखायी नहीं पड़ता? कोई प्रेम कर रहा है और तुम देखते हो—इसमें, और तुम प्रेम करते हो—इसमें तुम्हें भेद नहीं मालूम पड़ता? देखने से कभी कोई प्रेम को जान सकेगा? प्रेम तो करके ही जाना जा सकेगा।

दूसरा गा रहा हो, कोकिल-कंठ हो, बड़ा संगीतज्ञ हो, लेकिन सुन कर तुम संगीत को न जान सकोगे। यह तो उधार हो गया। कोई दूसरा गा रहा है, तुम मुर्दे की भाँति बैठे सुन रहे हो। इससे संगीत से तुम्हारा संबंध न जुड़ेगा। संगीत में उतरने के लिए तुम्हें सक्रिय होना पड़ेगा। नाच कर ही नाच जाना जा सकता है, देख कर नहीं। देखना तो सबस्टीट्यूट है, वह तो परिपूरक है। वह तो झूठा है। असली नहीं है, प्रामाणिक नहीं है।

जीवन के सत्य सक्रियता से जाने जाते हैं। जीवन के सत्यों में तुम्हें उतरना पड़ेगा। कोई दूसरा तैरेगा तो तैरने का आनंद तुम कैसे ले पाओगे? थोड़ा सोचो! जब देखने से इतना सुख मिलता है, तो हो जाने से कितना सुख न मिलता होगा! गाओ, नाचो, भूल जाओ सारे जगत को। उसकी याद ही तो तुम्हें नाचने नहीं देती और गाने नहीं देती।

नानक बड़े मधुर शब्दों में यह बात कहते हैं। वे कहते हैं—
सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।
वह द्वार कहां है, वह घर कहां है, जहां बैठ कर तू सबकी सम्हाल कर रहा है? तेरे घर का द्वार कहां खोजूँ? जिसके भीतर छिपा, तू सबको

सम्हाले हुए है। और उत्तर देते हैं—नाद तेरा द्वार है। नाद में छिपा ही तू सारे जगत को सम्हाले हुए है। ओंकार तेरा द्वार। उसी में छिपा हुआ तू सारे जगत को सम्हाले हुए है।

और अगर गीत की एक कड़ी तुम्हें पकड़ जाए, तो उस धागे को पकड़ कर तुम उस परमात्मा के द्वार तक जा सकोगे। नाद जब तुम्हारे भीतर बजेगा, जब तुम नाद में लीन हो जाओगे, उसी क्षण द्वार के सामने अपने को पाओगे।

सुबह से सांझा तक, सांझा से सुबह तक असंख्य राग बज रहे हैं। तुम जीवन में उन रागों को पहचानना शुरू करो। मनुष्य का सारा संगीत अस्तित्व के रागों से पैदा हुआ है। मनुष्य के सारे वाद्य अस्तित्व की नकल से पैदा हुए हैं। पक्षी गाते हैं, झरने गाते हैं, हवाएं गाती हैं, आकाश में बादल गरजते हैं, इन्हीं सबसे नाद पैदा हुए मनुष्य के। सारी राग-रागिनियां पैदा हुईं। इनसे ही सारे वाद्य निर्मित हुए।

अस्तित्व में राग को पहचानने की कोशिश करो। सुबह उठ कर पहला ध्यान चारों तरफ हो रही ध्वनियों पर डालना। और अगर तुम्हें ध्वनियां सुनायी पड़ने लगें, तो तुम पाओगे कि वे दिनभर तुम्हें सुनायी पड़ती रहेंगी। क्योंकि वे सदा जारी हैं। सिर्फ तुम बहरे हो।

रात के सन्नाटे में बैठ जाना और सुनना सन्नाटे को। सन्नाटे का नाद बहुत निकट है औंकार के। इसलिए जब भी तुम्हारे भीतर ओंकार बजेगा, तो पहले तो तुम्हें सन्नाटे का नाद ही सुनायी पड़ेगा। सन्नाटे की झाँई; जैसे झाँगुर बोलते हों और रात बिलकुल चुप हो, वैसी झाँई तुम्हें पूरे वक्त सुनायी पड़ने लगेगी—चौबीस घंटे! बाजार में, दुकान पर, दफ्तर में तुम पाओगे कि वह झाँई बजती ही जाती है। क्योंकि वह बज ही रही है। बाजार के शोरगुल में दब जाती है, बजना बंद नहीं होता। उपद्रव में खो जाती है, समाप्त नहीं होती। और तुम्हें पकड़ में आ जाए, तो तुम उसे कभी भी पहचान लोगे। और जैसे-जैसे तुम्हारी पकड़ साफ होती जाएगी और पहचान निखरेगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे चौबीस घंटे, अहर्निश राग-रागिनियों का मेला लगा हुआ है।

सब तरफ से अस्तित्व एक सेतीब्रेशन है, एक उत्सव है। उदासी का अस्तित्व से क्या लेना-देना? उदास होने का अर्थ ही यह है कि तुम अस्तित्व से कहीं टूट गए। जब तुम्हारे जीवन में उदासी छा जाए, तो जानना कि तुमने कोई कदम गलत लिया। जब तुम दुख से भर जाओ, तो जानना कि तुम कहीं भटके। दुख तो केवल सूचक है।

तुम्हारा जब नाता टूटता है, तभी तुम दुखी होते हो। बीमारी का अर्थ है कि इस प्रकृति से तुम्हारा नाता टूटा। जब शरीर प्रकृति के अनुकूल चलता है और साथ-साथ बहता है, तो स्वास्थ्य, तो आनंद।

एक ओंकार सतनाम, प्रवचन 13



रोग प्रतिरोधक क्षमता

किसी तत्व का सेवन करने से या कोई दवाई खाने से रातों-रात नहीं बढ़ती,
यह तो प्रकृति के साथ संतुलन में जीने का नतीजा है

हमारी दवाइयों और डॉक्टर की निर्भरता ने हमारे इम्यून तंत्र को पंगु बना दिया है, इसका परिणाम है कि हमें अपने शारीर की शक्तियों पर विश्वास नहीं रहा। हमने बीमारियों के प्रति अपने सब को खो दिया है, तुरंत ठीक होने के चक्रकर्त में हमने अपने शारीर की चमत्कारिक लाभप्रद शक्तियों को लगभग विरुद्ध कर दिया है। अपने खान-पान व जीवनचार्या में प्रकृति के साथ अधिक से अधिक जुँड़े और अपनी इम्यूनिटी को सशक्त होने का मौका दें। आइये पढ़ें:

एक बार उत्तरांचल में ट्रैकिंग करते समय एक नंग-धड़ंग साधु हमारे साथ हो लिये, वह लगभग सत्तर साल के होंगे, उनका चेहरा तेजोमय था। रात को मैं और मेरा मित्र टेंट और स्लीपिंग बैग में सोते और वह खुले आकाश के नीचे पूरे शरीर पर राख (भस्म) लगा, आग जला कर सोते। ऊंचाइयों पर और बर्फ में वह बिना किसी थकान के चलते थे।

एक दिन मैंने उनसे पूछा, बाबा आप इतने स्वस्थ कैसे रहते हैं? उन्होंने मुस्कुराते हुए जो जबाब दिया वह आज भी मेरे कानों में गूंजता है। वह बोले, 'स्वस्थ रहना बहुत सरल है, बीमार होने के लिए आदमी को प्रयत्न करना पड़ता है। प्रकृति पांच तत्वों का मेल है। अगर कोई इन पांच तत्वों से सहज और संतुलित रूप से जुड़ा है तो उसकी बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता सशक्त होगी। अगर तुम किसानों को देखो तो पाओगे उनकी प्रतिरोधक क्षमता शहरों में रहनेवाले लोगों से कहीं ज्यादा होती है क्योंकि वे शुद्ध वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश के सतत संपर्क में रहते हैं। सूर्य की रोशनी उनकी रक्त वाहिकाओं को साफ रखती है, हड्डियों और चमड़ी को स्वस्थ व मजबूत रखती है।'

जब मैंने उनसे पूछा की शरीर पर राख मलने का स्वास्थ्य से भी कोई संबंध है, तब उन्होंने कहा शरीर पर मली हुई राख कीकर की लकड़ी को जला कर बनी है, यह राख न सिर्फ कीट-पतंगों और मच्छरों से उन्हें बचाती वरन् रात को ठंड का प्रभाव भी कम कर देती है और दिन में यही राख शरीर को ठंडा रखती है व दोपहर को हानिकारक धूप से भी बचाती है। फिर जब इस राख को नदी के पानी से धोते हैं तो मिट्टी के तत्व शरीर में अवशोषित हो शरीर में बीमारियों से लड़ने की क्षमता को बढ़ाते हैं।

मैं उस समय चिकित्सा विज्ञान का छात्र था, उनकी बातें सुन मुझे लगा मैं किसी कृत्रिम विज्ञान का छात्र हूँ
तक नहीं है।

इस साधु की बातों को हम गहराई से आज के परिवेश में जांचें तो पाएंगे उनकी बातों में एक आधारभूत सत्यता है। हमारा आधुनिक जीवन दिन-प्रतिदिन कृत्रिमता की ओर बढ़ रहा है। मुझे याद है गर्मियों में हम घर की छत पर सोया करते थे, अब पता चलता है कि ऐसा करने से हमें आकाश तत्व की प्राप्ति होती है, ठंड में नियमित रूप से सूर्य स्नान होता था जिस से अग्नि तत्व शरीर में सक्रिय होता था, उगते या अस्त होते सूरज का दर्शन करना एक आम बात थी—तब ऊंची इमारतें नहीं बनी थीं तो यह सब सहज था। दिन भर बच्चे धूल-मिट्टी में खेलते थे—यह शरीर को सशक्त करने का एक जरिया भी था, और प्रकृति के तत्वों से जुड़े रहने का माध्यम भी। पांचों तत्वों से जुड़ने के लिए सोचना नहीं पड़ता था, यह एक जीवन शैली का हिस्सा था—शुक्र है, यह आज भी हमारे गावों की जीवन चर्चा का हिस्सा है।

पश्चिमी देशों की तुलना में भारत जैसे देश अभी भी अपनी जमीन से सीधे जुड़े हुए हैं। डब्लू एच ओ का एक सर्वे कि विकसित देशों की तुलना में देशों के लोगों में बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है—यह

बात सीधे इस ओर इशारा करती है कि हम अभी भी धरती से काफी हद तक सीधे जुड़े हुए हैं। आधुनिकीकरण की दौड़ में हम प्रकृति से पूरी तरह कटे नहीं हैं। यह एक महत्वपूर्ण कारण है कि हम करोना आपदा में विकसित देशों कि तुलना में बहुत कम प्रभावित हुए हैं और इस बीमारी से उबरने वाला रिकवरी रेट दूसरे देशों की तुलना में अधिक है। यहां भी अगर हम देखें तो यह संक्रमण गांवों की अपेक्षा शहरों में अधिक है, वह भी उन शहरों में अधिक जो अधिक विकसित हैं। इन शहरों में भारी जनसंख्या के कारण आकाश तत्व सिकुड़ गया है, वायु तत्व यातायात के धुएं से प्रदू हुए कंकरीट ने धरती तत्व से संपर्क समाप्त कर दिया है।

इम्यूनिटी या रोग प्रतिरोधक क्षमता के बारे में अगर हमें समझना है, जानना है तो यह जानना अत्यंत जरूरी है कि यह अचानक किसी तत्व का सेवन करने से या कोई दवाई खाने से रातों-रात नहीं बढ़ती, यह तो प्रकृति के साथ संतुलन में जीने का नतीजा है। यह एक तरह कि जीवन शैली का प्रतिफलन है जिस से आधुनिक मनुष्य लगभग कट्टा जा रहा है।

अपने आप को हील करने की, स्वस्थ रखने की, अपनी इम्यूनिटी को सशक्त रखने की कला हमें प्रकृति से सीखनी चाहिए। इस लॉक-डाउन ने हमारी आम दिनचर्या को हमसे छीन लिया है पर बदले में कितना कुछ दिया है इस पर हमारी नजर नहीं जाती। हमारे द्वारा किए गए अनिग्नत दुर्व्यवहारों के बावजूद प्रकृति में अपने आप को स्वस्थ करने की, हील करने की पूरी क्षमता है, इसके कई जीते जागते उदाहरण हमारे सामने आ रहे हैं, जैसे ओज़ोन पर्त में बने छिद्रों का भर जाना, नदियों का पुनः शुद्ध हो जाना आदि। परंतु हम इस बात को क्यों भूल जाते हैं कि हम भी इस अद्भुत प्रकृति का हिस्सा हैं?

जब हम किसी बीमारी से ग्रसित होते हैं तो बिना समय गवाए स्वयं ही दवा ले लेते हैं या डॉक्टर की शरण में चले जाते हैं। कोई गंभीर बात हो, असहनीय दर्द हो, फ्रेक्चर हो तो डॉक्टर के पास जाना ही चाहिए। पर जब ऐसा न हो तो हमे शरीर की हीलिंग पावर, रोगों से निपटने की क्षमता को अवसर देना चाहिए। इंग्लिश भाषा में एक कहावत है जिसका अर्थ है—इस्तमाल न करना खो देना है। हमारी दवाइयों और डॉक्टर की निर्भरता ने हमारे इम्यून तंत्र को पंगु बना दिया है, इसका परिणाम है कि हमें अपने शरीर की शक्तियों पर विश्वास नहीं रहा। हमने बीमारियों के प्रति अपने सब को खो दिया है, तुरंत ठीक होने के चक्कर में हमने अपने शरीर की चमत्कारिक लाभप्रद शक्तियों को लगभग विस्तृत कर दिया है। अब पूरे विश्व की निगाह करोना वेक्सिन पर लगी हुई है जो अवतरित हो सबका बेड़ा पार करेगा। इस स्थिति के लिए कौन दोषी है हम स्वयं या आधुनिक चिकित्सा विज्ञान या चमगादड़?

शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता हमारे खान पान से भी सीधे जुड़ी हुई है। मेरे एक मित्र हैं जो जर्मनी में आयुर्वेदिक खानसामा है। उन्हे इस व्यवसाय

से काफी पैसा भी मिलता है। मिलने पर मैंने उनसे पूछा भाई यह आयुर्वेदिक भोजन क्या होता है? हमने तो न सुना न खाया। उसने हंसते हुए कहा जो भोजन हम-तुम घर पर रोजाना करते हैं, बस उसमें मिर्च-मसाला कम कर दो तो पश्चिमी देशों के लिए वह आयुर्वेदिक हो जाता है। बात तो मेरे मित्र की सही है, हम भोजन में जिन मसालों का प्रयोग करते हैं उनमें बीमारियों से लड़ने के गुण कूट-कूट कर भरे हैं। हाल ही में हल्दी को पूरे विश्व में पॉवर-फूड का दर्जा दिया गया है, इसके कई गुण हैं जिसमें शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना प्रमुख है। स्वस्थ रहने के लिए पश्चिमी देशों में सबसे ज्यादा गोलियां और पॉवर-फूड का सेवन किया जाता है—वहां लहसुन से लेकर संतरे तक सब टेबलेट के रूप में उपलब्ध हैं, जो पोषक तत्व हमें भोजन से प्राप्त होता है वह एक चम्मच पाउडर में संग्रहीत है, इसलिए लोग खुलकर पोषक तत्वों से रहित भोजन करते हैं और अंत में एक चम्मच इस तरह के पाउडर खा लेते हैं ताकि संतुलन बना रहे। पर यह स्थिति वस्तुतः अपने आप को धोखा देने जैसी है। नरीजा—बीमारियां, कमजोर इन्यूनिटी।

करोना संक्रमण ने हमारी अविकसित रोग प्रतिरोधक क्षमता को उजागर कर दिया है, और साथ ही साथ यह भी बता दिया कि वह हमारे शरीर में मौजूद है—करोना रोग से संक्रमित कई लोग मात्र पंद्रह दिन कमरे में बंद रहने से ठीक हो गए, ऐसे लोगों की संख्या अब बढ़ रही है। कृत्रिम जीवन की दौड़ से उन्होंने अपने शरीर को विश्राम दिया और उनके शरीर की प्राकृतिक क्षमता सक्रिय होकर उन्हें हील करने लगी, स्वस्थ करने लगी। ठीक जैसे

प्रकृति से हमारा हस्तक्षेप हटते ही वह हील होने लगी। इस स्थिति को देख लगता है जैसे हम प्रकृति के लिए करोना वाइरस है। ऐसी स्थिति को ही प्रकृति से टूट जाना कहते हैं।

इतना सब जानने के बाद प्रश्न उठता है की हम क्या करें कि हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़े, तो पहली बात यह जान लें कि इम्यूनिटी किसी दर्वाई से रातों-रात सशक्त होनेवाली चीज़ नहीं है, यह हमारी पूरी जीवन शैली का आइना है। आयुर्वेदिक दवाइयां, घेरेलू नुस्खे रोग प्रतिरोधक क्षमता को सशक्त करने में सहायक होते हैं अतः ऐसी चीजों का उपयोग जारी रखें, याद रखें कि भोजन जितना कम तत्त्व व कम गरिष्ठ हो उतना ही उसके प्राकृतिक तत्व जिंदा रहते हैं—भोजन में प्राकृतिक तत्व जितने जिंदा रहेंगे उतना ही वे आपकी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाएंगे। जितना संभव हो सके ताजा बनाया हुआ भोजन करें, फ्रिज में रखा हुआ या फ्रोजन नहीं। फ्रिज के पानी से भी बचें।

थोड़ा समय संभव हो तो सुबह-सुबह की धूप में बिताएं, थोड़ा समय खुले आकाश के नीचे व्यतीत करें, थोड़ा समय इस धरा से संपर्क बनाने में बिताएं—इसके कई सहज तरीके हैं जैसे चलते समय कुछ समय के लिए पैर के तलए और जमीन के संपर्क के प्रति जागरूक हों। कहने का तात्पर्य है जितना और जब भी संभव हो प्रकृति के संपर्क में रहें। अगर करोना आपदा से भी हम प्रकृति का सम्मान करना, उसके साथ संतुलन में जीना नहीं सीखे तो ऐसे और भी ज्यादा भीषण प्रकोप देने वाले वायरसों का जन्म निश्चित है।

रोग के साथ तथाता का एक प्रयोग

जब भी शरीर में कोई रोग हो, उसका प्रतिरोध मत करो। दवा जरूर लो, लेकिन एक भिन्न दृष्टिकोण के साथ, एक भिन्न मानसिकता के साथ।

दवा के प्रति दो बिलकुल भिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं, जो एक-दू विपरीत हैं। एक दृष्टिकोण तो यह है कि रोग को नष्ट करना है, यह एक नकारात्मक दृष्टिकोण है। लगभग सभी लोग इसी दृष्टिकोण के साथ जीते हैं।

जो व्यक्ति तथाता के विषय में जानता है, जो इस भाव में जीता है कि जो है सो है, उसका दृष्टिकोण यह नहीं होगा। वह रोग का विरोध नहीं करेगा। वह दवा इसलिये लेगा कि शरीर को सहयोग मिल सके कि वह रोग को स्वीकार कर पाये, वह शरीर को इतना सशक्त करने के लिये दवा लेगा कि वह रोग के साथ तथाता में जी पाये। फिर तुम रोग के विरोध में दवा नहीं ले रहे, तुम अपने स्वास्थ्य व दैहिक शक्ति को बढ़ाने के लिये दवा ले रहे हो ताकि तुम इस रोग को एक मित्र की तरह स्वीकार कर पाओ, और तुम्हारे भीतर उसके प्रति कोई शत्रुता का भाव न रहे।

तुम हैरान होगे कि तथाता का यह भाव कैसे शारीरिक रोग में तुम्हारी मदद करता है। तथाता का यह भाव तुम्हारे भावनात्मक उहापोह में, तुम्हारे मानसिक द्वंद्वों में भी तुम्हारी मदद करता है क्योंकि जो कुछ हो रहा है तुमने उससे मित्रता कर ली।

ओशो, दि रेजर्स एज, प्रवचन 17



अपनी श्रेष्ठतम स्मृतियों का स्मरण करें

उन्हें हृदय में संजोयें, और अपने लिये सुख के द्वार खोल लें।

ईसाइयों का एक पुराना संप्रदाय था—ईसेन, जिसमें जीसस को दीक्षा मिली थी। ईसेन संप्रदाय का एक ध्यान-मार्ग था। और ध्यान-मार्ग यह था कि तुम्हारे जीवन में अगर कभी भी कोई ऐसा क्षण घटा हो, जिस क्षण में विचार न रहे हों और तुम आनंद से भर गए हो, तो उसी क्षण को पुनः-पुनः स्मरण करके, उसी पर ध्यान करो। वह क्षण कोई भी रहा हो, उसी को बार-बार स्मरण करके उस पर ही ध्यान करो, क्योंकि उस क्षण में तुम अपनी श्रेष्ठतम ऊँचाई पर थे, जहां तक तुम अब तक जा सके हो। उसी को खोदो, उसी जगह मेहनत करो।

सभी के जीवन में ऐसा कोई क्षण है। उसी की आशा में आदमी जीए चला जाता है कि शायद वह क्षण फिर आए। इसी भरोसे में जीए चला जाता है कि शायद वह क्षण और गहरा हो जाए। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसके जीवन में एकाध ऐसी स्मृति न हो। कभी-कभी तो बहुत क्षुद्र कारणों में वैसी घटना घट जाती है। कभी तुम जा रहे हो, सूरज की किरणें तुम्हारे सिर पर पड़ रही हैं, अचानक तुम पाते हो कि तुम शांत हो। तुमने कुछ किया नहीं है, आकस्मिक, तुम उस जगह आ गए हो, जहां टर्णिंग हो गई।

कभी बहुत साधारण सी घटनाओं में, कि तुम अपने बिस्तर पर पड़े हो, सुबह तुम्हारी आंख खुली और अचानक तुम पहचान भी नहीं पाते हो कि तुम कौन हो। वह जो आदमी रात सोया था—उपद्रव, परेशानी, चिंता से भरा—वह नहीं है। एक क्षण को तुम्हें यह भी समझ में नहीं आता कि तुम कहां हो! तुम एकदम शांत हो। तुम इतने शांत हो कि खुद की पहचान भी भूल गई है। कभी किन्हीं भी कारणों में—उनका कोई संबंध नहीं है। तुम्हारे भीतर जिंदगी चलती रहती है। कभी तुम्हारे अनजाने भी भीतर के खंड-खंड इकट्ठे पड़ जाते हैं—संयोगवश। और तब कोई भी घड़ी बाहर मौजूद हो, तुम अचानक शांत हो जाते हो।

इन स्मृतियों को संजोओ। फिर अगर तुम ध्यान कर रहे हो, तो ऐसी स्मृतियां बढ़ती चली जाएंगी। इन स्मृतियों को इकट्ठा करो। इनको हृदय के कोने में इकट्ठा करते जाओ, ताकि वे गहरी हो जाएं। और सारी स्मृतियां जितनी तुम्हारे जीवन में इस आनंद की घटी हों, जब तुमने संगीत जाना हो, उन सबको पास ले आओ, उनको एकाग्र कर दो एक बिंदु पर, ताकि उन सबके सहारे तुम आगे बढ़ सको। अभी तुम्हें खंड-खंड मिलेंगे, तुम इन्हें इकट्ठे करते जाना। कभी ये खंड इकट्ठे होते जाएंगे, तो और बड़े खंडों के मिलने की संभावना बढ़ती जाएगी। ऐसे धीरे-धीरे एक-एक ईंट रख कर वह भवन खड़ा होगा, जिस दिन तुम उस महा-संगीत को सुन सकोगे, जिसे जीवन का संगीत कहा जा रहा है।

लेकिन आदमी बहुत उल्टा है। हम दुख की स्मृति संजोते हैं! हम दुख में बड़ा रस लेते हैं। हम बार-बार दुख की चर्चा करते हैं। लोगों की बातें सुनो, वे अपना दुख रोते रहते हैं। सुख कोई भी नहीं हंसता, दुख लोग रोते हैं! तो

यह भाषा में शब्द ही नहीं कि फलां आदमी सुख हँस रहा है। भाषा में शब्द यह है कि फलां आदमी दुख रो रहा है। लोग अपना दुख एक-दूसरे को बताते रहते हैं, जैसे कि दुख कुछ बताने जैसा है। जैसे कि दुख कुछ बड़ी घटना है! कोई और व्यापक व्यापक कार्य किया है कि आप दुखी हैं!

लेकिन क्यों आदमी दुख की इतनी चर्चा करता है? और उसे पता नहीं कि वह अपना आत्मघात कर रहा है। क्योंकि दुख की चर्चा से दुख घना हो जाता है। दुख की चर्चा से दुख इकट्ठा हो जाता है। दुख की चर्चा से दुख पर ध्यान बंट जाता है, ध्यान बंध जाता है। दुख की चर्चा से दुख घनीभूत होता है और नये दुखों को पैदा करता है। क्योंकि तुम जो संजोते हो, उसी को जानने में समर्थ होते चले जाते हो।

सुख की कोई बात ही नहीं करता ! सुख को हम छोड़ कर ही चलते हैं। वैसे सुख है भी कम। लेकिन उसके कम होने का एक कारण यह भी है कि हम सुख को इकट्ठा नहीं करते हैं। हम दख्ख को इकट्ठा करते हैं।

सुख की चर्चा के लिए नहीं कह रहा है

करो। दुख को एकांत में विसर्जित कर दो। द्वार-दरवाजे बंद कर लो, हृदयपूर्वक रो लो, चीख लो, चिल्ला लो; लेकिन दूसरे के पास जा कर दुख की चर्चा मत करो। क्योंकि न तो तुम दूसरे के सुख में सहयोगी हो रहे हो, तुम उसे भी दुखी कर रहे हो। इसलिए दुख की चर्चा करने वाले पर हम सहानुभूति कितनी ही बताएं, लेकिन उस आदमी से हम बचना चाहते हैं। वह न मिले तो अच्छा है। क्योंकि वह अपने दुख की तरंगें हम तक भी पहुंचा देता है। और अगर हम उसकी दुख की चर्चा सुनते भी हैं, तो इसी आशय में कि वह चुप हो जाए, तो हम अपने दुख की चर्चा उसको सुनाएं। ऐसा दुख का लेन-देन चलता रहता है।

दुख की बात ही बंद कर दो। दुख तुम्हारा निजी है, उसे तुम निज में ही भोग लो। दबाने को नहीं कह रहा हूँ जरूर करो, लेकिन शून्य-आकाश में, जहां वह किसी की भी छाती पर बोझ नहीं बनेगा। और दुख बता कर सहानुभूति मत मांगो। यह भिखर्मंगापन है। अकेले में छोड़ दो, दुख को विसर्जित कर दो।

और जब भी कोई तुम्हारे पास हो, तो तुम्हारे भीतर जो सुख की स्मृति है, उसको ऊपर ले आओ। जब भी तुम किसी के पास हो, तो तुम्हारे सुख को प्रकट करे, अपने सुख को नाचो और हँसो, और अपने सुख को जीओ, ताकि तुम दूसरे के दुख को थोड़ा कम कर पाओ। और तुम जितना इस सुख को जीने लगाए, उतना ही सुख बढ़ता जाएगा। और जितना तुम इस सुख की स्मृति करोगे, उतनी ही ज्यादा गहन सख में तम्हारी गति होने लगेगी।

हम जिस पर ध्यान देते हैं, वह बढ़ता जाता है।

साधना-सूत्र, प्रवचन 11

विकास के नाम पर प्रकृति के साथ अधिक हस्तक्षेप न करें

हम नहीं जानते उनके क्या-क्या
परिणाम होंगे, कितनी नयी बीमारियां
हम खड़ी कर लेंगे

इकोलाजी का आंदोलन रोज गति पकड़ रहा है। इस आंदोलन का कहना है कि प्रकृति का एक संगीत है, उसे नष्ट मत करें। और एक तरफ से हम नष्ट करते हैं संगीत को तो हम पूरी व्यवस्था को बिगड़ देते हैं। और हमें पता नहीं कि हम क्या कर रहे हैं और उसके क्या परिणाम होंगे। क्योंकि जगत एक व्यवस्था है। केआस नहीं, एक अराजकता नहीं है; जगत एक व्यवस्था है। और इस जगत की व्यवस्था में छोटी से छोटी चीज बड़ी से बड़ी चीज से जुड़ी है। यहां कुछ भी विच्छिन्न नहीं है, अलग-अलग नहीं है। जब आप कुछ छोटा सा भी फर्क करते हैं तो आप पूरे जगत की व्यवस्था में फर्क ला रहे हैं। एक पत्थर का हटाया जाना भी पूरे जगत की व्यवस्था में परिवर्तन की शुरुआत है। और इसके क्या परिणाम होंगे, कितने व्यापक होंगे, उन्हें कहना मुश्किल है।

ऐसा हुआ कि बर्मा के एक बहुत छोटे, दूर देहात में प्लेग की बीमारी से बचने के लिए चूहों को मार डाला गया। चूहों के मर जाने पर गांव की बिल्लियां मरनी शुरू हो गईं; क्योंकि चूहे उनका भोजन थे। और गांव की बिल्लियों के मर जाने पर एक बीमारी गांव में फैल गई, जो उस गांव में कभी भी नहीं फैली थी। क्योंकि उन बिल्लियों की मौजूदगी की वजह से कुछ कीटाणु गांव में विकसित नहीं हो सकते थे, बिल्लियों के मर जाने की वजह से वे विकसित हो गए। और जिस



मिशन ने गांव के चूहे नष्ट किए थे प्लेग को अलग करने के लिए, वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। गांव के मुखिया को बहुत समझा-बुझा कर राजी किया जा सका था चूहों को मारने के लिए।

उस गांव के मुखिया ने कहा कि अब हम क्या करें? बिल्लियां भी मर गईं, और यह नई बीमारी फैल गई। और इस नई बीमारी का अभी कोई इलाज नहीं था।

तो जिस मिशन ने यह सेवा की थी गांव की, उन्होंने कहा कि हम पता करते हैं। लेकिन उन बूढ़े गांव के पंचायत के लोगों ने कहा कि तुम कब तक पता कर पाओगे, यह बीमारी हमारे प्राण ले लेगी। फिर प्लेग के हम आदी हो चुके थे। और प्लेग के लिए हमने एक प्रतिरोधक शक्ति भी विकसित कर ली थी। हजारों वर्ष से प्लेग थी; हम उससे लड़ना भी सीख गए थे। इस नई बीमारी से लड़ना भी संभव नहीं है। हमारा शरीर भी प्लेग के लिए सक्षम हो गया था। यह नई बीमारी हमारे प्राण लिए ले रही है, तोड़े डाल रही है। इतनी जल्दी तो नई बीमारी दूर नहीं की जा सकती थी।

और गांव के बूढ़ों ने यह भी कहा कि अगर तुम यह नई बीमारी भी दूर कर दो, तो क्या भरोसा है कि तुम और दूसरी बीमारियां पैदा करने के कारण न बन जाओ? इसलिए उचित यही होगा कि पड़ोस के गांव से हम चूहे मांग लें। कोई उपाय नहीं था। पड़ोस के गांव से चूहे मांग लिए गए। चूहों के पीछे बिल्लियां चली आईं। और बिल्लियों के आते

ही वह जो बीमारी फैली गई थी, वह विदा हो गई।

इकोलाजी का अर्थ है कि जिंदगी एक व्यवस्था है। उसमें जरा सा भी कहीं कोई फर्क, तत्काल पूरे पर फर्क पैदा करता है। और पूरे का हमें कोई बोध नहीं है। पूरे का हमें कोई पता नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है कि आज जमीन पर सर्वाधिक दवाइयां हैं, और सर्वाधिक बीमारियां हैं। और आज जमीन पर आदमी को सुख पहुंचाने के सर्वाधिक उपाय हैं, और आज से ज्यादा दुखी आदमी जमीन पर कभी भी नहीं था। क्या कारण होगा? कारण एक ही मालूम पड़ता है कि हम एक का इंतजाम करते हैं और दस इंतजाम बिगड़ लेते हैं। जब तक हम दस का इंतजाम करते हैं, तब तक हम हजार इंतजाम बिगड़ लेते हैं।

पश्चिम में, जहां कि वातावरण को बदलने की, जिंदगी को बदलने की सर्वाधिक चेष्टा विज्ञान ने की है, वहां के जो छोटी के विचारक हैं, वे कहने लगे हैं, करके हमने यह देखा, आदमी सुखी नहीं हुआ, आदमी दुखी हुआ। जीवन अनेक तरह के कष्टों में पड़ गया, जिनका हमें खयाल नहीं था।

जैसे समझें, हम कोशिश करते हैं कि आदमी ज्यादा जीए। हम कोशिश करते हैं, जो बच्चा पैदा हो जाए, वह मरे नहीं। आज से हजार साल पहले दस बच्चे पैदा होते थे तो नौ बच्चे मर जाते थे, एक बच्चा बचता था। वह प्रकृति की व्यवस्था थी। बड़ी क्रूर मालूम पड़ती है—नौ बच्चे मर जाएं और एक बच्चा बचे। तो हमने चेष्टा की हजार साल में; आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो नौ बचते हैं, एक मरता है। हमने बिलकुल उलटा दिया। लेकिन परिणाम क्या हुआ? परिणाम बहुत हैरानी का है। जो नौ बच्चे हजार साल पहले मर जाते, वे अब बच जाते हैं। वे नौ बच्चे जो हजार साल पहले मर जाते, मरते ही इसलिए कि उनमें जीवन की क्षमता कम थी। आज वे बच जाते हैं। उनमें जीवन की क्षमता कम है। वे जीते हैं, लेकिन बीमार जीते हैं। और वे अकेले ही नहीं जीते, वे बच्चे पैदा कर जाएंगे। और उनके बच्चों के बच्चे—और लाखों साल तक वे बीमारी के गढ़ बन जाएंगे।

अभी एक बहुत बड़े चिकित्साशास्त्री ने, कैनेथ वाकर ने कहा था कि हमने जो इंतजाम किया है चिकित्सा का और जो खोज की है, उसका परिणाम यह होगा कि हजार साल बाद स्वस्थ आदमी खोजना ही असंभव हो जाएगा।

हो ही जाएगा। क्योंकि वे जो नौ बच्चे बच रहे हैं, वे बच्चे पैदा कर रहे हैं। और धीरे-धीरे सारी मनुष्यता रुग्न होती जा रही है। उन नौ बच्चों में वे बच्चे भी बच जाएंगे, जो बुद्धिहीन हैं, विक्षिप्त हैं, जिनमें कोई कमी है, अंधे हैं, लूले हैं, लंगड़े हैं। वे भी बच जाएंगे। और जिन्हें बचाया है, वे मानवतावादी हैं। उनकी अभीप्ता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। उनके विचार में दया है। लेकिन उतनी गहरी समझ नहीं

है, जितनी लाओत्से बात कर रहा है। वे सब बच्चे जो बुद्धिहीन हैं, रुग्न हैं, विक्षिप्त हैं, पागल हैं, वे सब बच जाएंगे। और वे बच्चे पैदा करते रहेंगे। कोई आश्चर्य नहीं कि पांच हजार साल के भीतर सारी मनुष्यता रोग, विक्षिप्तता और पागलपन से भर जाए। आज अगर अमरीका में वे कहते हैं कि हर चार आदमी में एक आदमी मानसिक रूप से रुग्न है। तो यह ज्यादा देर तक रुकेगा नहीं एक पर मामला; धीरे-धीरे फैलेगा और चारों रुग्न हो जाएंगे।

हम जो करते हैं, उसके परिणाम क्या होंगे? परिणाम अनंत आयामी हैं, उनका कोई भी पता नहीं है। जब हम एक तार छूते हैं, तब हम पूरे जीवन को छू रहे हैं। और उसके क्या-क्या दूरगामी अर्थ होंगे, उनका हमें कुछ भी पता नहीं है।

आदमी जो करता है, नहीं जानता कि उसके परिणाम क्या होंगे। और यह भी नहीं जानता कि क्यों कर रहा है। उसके भीतर अचेतन कारण क्या हैं, उसका भी उसे पता नहीं है। भविष्य के परिणाम क्या होंगे, इसका भी उसे पता नहीं है। लेकिन किए चला जाता है। और तब जाल में उलझता चला जाता है।

संसार विराट की कृति है, इसे मानवीय हस्तक्षेप से नहीं गढ़ा जा सकता। लेकिन आदमी हस्तक्षेप करना चाहता है। छोटी-छोटी बात में हस्तक्षेप करना चाहता है। जहां न किए भी चल जाता, वहां भी करना चाहता है।

स्वर्ग निर्मित करना हो तो निसर्ग को जहां तक बन सके मत छेड़ें। मनुष्य है क्या? एक छोटा जीवाणु। और जब वह विराट में हस्तक्षेप करता है, तो वह उस तिनके की भाँति है जो नदी में बह रहा है और सोच रहा है कि नदी के विपरीत बहूं
। बह नहीं पाएगा; लेकिन बहने की कोशिश में दुखी बहुत हो जाएगा, असफल बहुत हो जाएगा। लाओत्से कहता है, उस तिनके की भाँति हो रहो जो नदी से कोई कलह ही नहीं करता, जो नदी के साथ बहता है।

जो लड़ता है वह भी साथ ही बहेगा, ध्यान रखना, कोई उलटा तो बहने का तिनके के पास उपाय नहीं है। क्या तिनका नदी में उलटा बहेगा? वह भी नदी में ही बहेगा; लेकिन मजबूरी में, दुख में, पीड़ा में, लड़ता हुआ, हारता हुआ, पराजित होता हुआ, प्रतिपल उखड़ता हुआ बहेगा। विषादग्रस्त होगा। और जो तिनका नदी में दूसरा बह रहा है उसके पड़ोस में, बिना लड़े, वह भी बहेगा। दोनों बहेंगे तो नदी की धारा में ही—क्योंकि नदी है विराट, तिनका है क्षुद्र, कोई उपाय नहीं है विपरीत जाने का।

लेकिन जो जाने की कोशिश करेगा, वह दुख में गिर जाएगा और उसकी शक्ति व्यर्थ ही अपव्यय होगी।

ताओ उपनिषद, प्रवचन 60

सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में ओशो हर संध्या साधकों के एक छोटे से समूह से मिलते थे, जिसमें वे लोग होते जो सन्यस्त होना चाहते थे या किसीकी कोई समस्या होती। इस मीटिंग को दर्शन कहा जाता था। दर्शन डायरियों के पन्नों में सिमटे, गुरु-शिष्य के बीच घटे ये संवाद क्षण, ओशो के सर्वत्र छिपे उस आयाम को प्रकट करते हैं जो अधिकतर मित्रों के लिए अनजाना ही है। इन दर्शन डायरियों को मा प्रेम मनीषा व उनकी सहयोगी टीम ने दर्ज किया था, ज्यूं का त्यूं!

प्रतिकूल परिस्थितियों में ऊर्जा का रक्षा-क्वच बना लें और केंद्रित रहें

एक युवक पश्चिम लौट रहा है और सांध्य दर्शन में ओशो के सामने अपना एक प्रश्न लेकर आया है। वह ओशो से कहता है कि एक साल पहले जब वह पूना आया था तो प्रियजनों ने भी उसका विरोध किया था और उन लोगों ने भी जिनके साथ वह काम करता था। वे सब लोग अभी भी ओशो से उसके जुड़ने का विरोध ही करते हैं। ऐसे में जब वह वापस जाकर अपने कार्य को जमायेगा तो स्थितियां उसके लिये बहुत प्रतिकूल होंगी। यह उसके लिये किसी प्राकृतिक आपदा के बीच अपनी छत के तिनके समेटने के समान ही होगा। वह ओशो से पूछता है कि इन प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच वह केंद्रित कैसे रह पाये ताकि एक सूजनात्मक एकाग्रता के साथ फिर से अपने कार्य को जमा पाये?

ओशो : मैं तुम्हें एक विधि देता हूँ

यह तीन चरणों में है। पहले सात दिनों के लिए, पहला चरण: बिस्तर पर लेटे हुए या बैठे हुए, लाइट बुझा दो और बिलकुल अंधेरा कर लो। फिर किसी भी ऐसे सुंदर क्षण को याद करो जो तुमने अतीत में अनुभव किया हो। कोई भी सुंदर क्षण जो तुम्हें सबसे ज्यादा छू गया हो। हो सकता है कि वह बहुत ही साधारण

सा क्षण रहा हो—क्योंकि कई बार असाधारण घटनाएं साधारण क्षणों में ही घटती हैं।

तुम बस बैठे हो, कुछ न करते हुए—और अचानक छत पर बारिश गिरने लगी...उसकी सुगंध, उसकी आवाज़...तुम पूरी तरह से घिर गए—और कुछ क्लिक कर गया। तुम एक पवित्र क्षण में प्रवेश कर गए।

या किसी दिन सड़क पर चलते हुए अचानक वृक्षों के पीछे से सूर्य की किरणें तुम पर पड़ने लगीं...और क्लिक! कोई द्वार खुल गया। एक क्षण के लिए तुम दूसरे ही संसार में पहुंच गए।

ऐसा कोई भी क्षण चुन लो और एक बार चुनने के बाद लगातार सात दिनों के लिए उसे दोहराते रहो। उस क्षण की छोटी से छोटी डिटेल में जाओ। छत पर बारिश पड़ रही है...टिप, टिप की आवाज़...मिट्टी की खुशबू...क्षण के पूरे ताने-बाने को महसूस करो...कोई पक्षी गा रहा है, कोई कुत्ता भौंक रहा है...घर में कोई एलेट गिर गई है और उसकी आवाज़ आ रही है।

हर तरह से हर डिटेल में जाओ। हर इंद्रिय के द्वारा उस क्षण के सारे आयामों को महसूस करो। हर रात तुम्हें लगेगा कि तुम उस क्षण में और-और गहरे जा रहे हो। तुम उन चीजों को भी याद कर पाओगे जो कि तुम वास्तविक क्षण में चूक गए थे लेकिन जिन्हें तुम्हारे मस्तिष्क ने रिकॉर्ड कर लिया था। तुम क्षण को चूको।

या न चूको, मस्तिष्क सारी चीजें रिकॉर्ड कर लेता है।

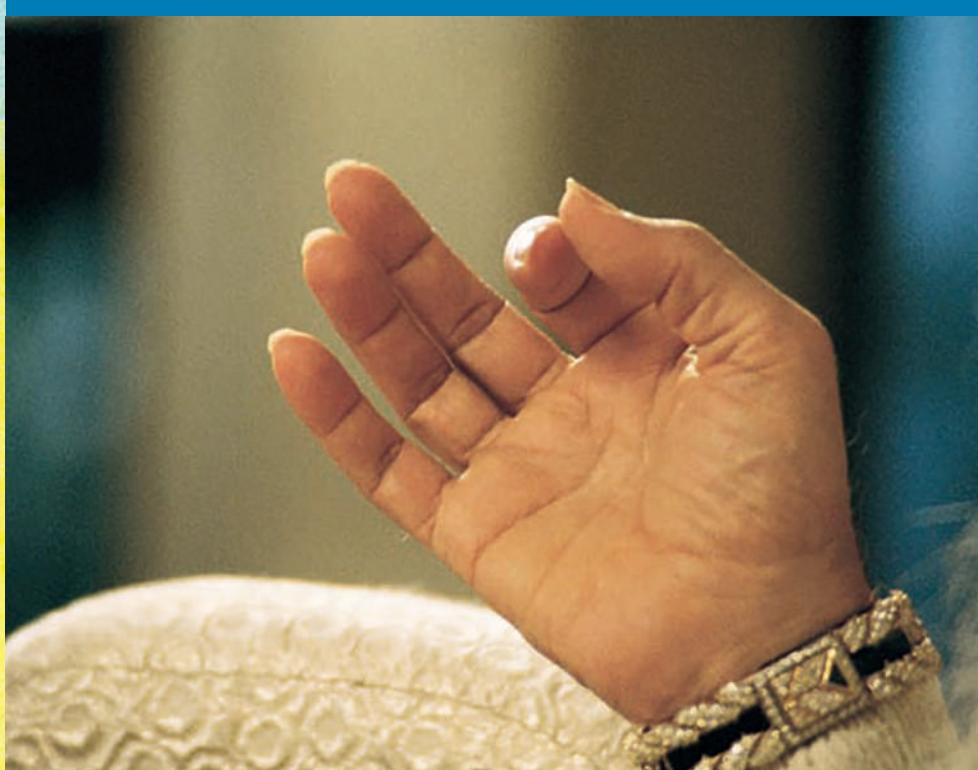
तुम ऐसी सूक्ष्म चीजों को भी महसूस कर पाओगे जिनका तुम्हें पता भी नहीं होगा कि तुमने अनुभव की थीं। जब तुम्हारी चेतना उस क्षण पर फोकस हो जाएगी तो वह क्षण दोबार जीवंत हो जाएगा। तुम नई-नई चीजें महसूस करोगे। तुम्हें अचानक पता चलेगा कि उस क्षण में क्या-क्या घट रहा था जिसका तुम्हें पता ही नहीं चला। मस्तिष्क सब कुछ रिकॉर्ड कर लेता है। वह एक विश्वासपात्र अनुचर है, और बहुत योग्य भी।

सातवें दिन तक तुम उस क्षण को इतनी स्पष्टता से देख पाओगे कि तुम्हें लगेगा कि इतनी स्पष्टता से तुमने कोई और क्षण नहीं देखा।

सातवें दिन के बाद इसी क्रम को दोहराओ लेकिन उसमें एक चीज जोड़ दो। आठवें दिन जब तुम उस क्षण को उसकी हर डिटेल में देख रहे हों तो महसूस करो कि उसके पूरे वातावरण ने तुम्हें चारों ओर से घेर लिया है—तीन फीट तक। महसूस करो कि वह क्षण एक आभामंडल बन कर तुम्हारे चारों ओर छा गया है। चौदहवां दिन आते-आते तुम एक दूसरे जगत में पहुंच जाओगे और तुम्हें पता होगा कि इन तीन फीट के पार एक बिलकुल दूसरा समय और एक बिलकुल दूसरा आयाम भी मौजूद है।

फिर तीसरे सप्ताह में एक और चीज जोड़नी है। क्षण को जीओ, उसके आभामंडल से घिर जाओ, और अब एक काल्पनिक परिस्थिति का निर्माण करो। तुम बहुत अच्छा महसूस कर रहे हो; तीन फीट तक तुम शुभ से और दिव्यता से घिरे हुए होग। अब ऐसी किसी परिस्थिति के बारे में सोचो कि किसी ने तुम्हारा अपमान कर दिया, लेकिन वह अपमान एक सीमा तक ही पहुंच सकता है। वह जो तीन फीट का कवच है वहां एक बाढ़ लगी है जहां से अपमान भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। वह तीर की तरह आता है और उस बाढ़ से टकराकर गिर जाता है। या किसी दुख भरे क्षण को याद करो...तुम दुखी हो—लेकिन वह दुख कांच की उस दीवार तक आता है और उससे टकराकर गिर जाता है। वह तुम तक कभी पहुंचता ही नहीं। यदि पहले दो सप्ताह तुमने ठीक से प्रयोग किया है तो तीसरे सप्ताह में तुम देख पाओगे कि हर दुख, हर आवेश उस तीन फीट की सीमा तक आता है और तुममें प्रवेश नहीं कर पाता।

चौथे सप्ताह से इस आभामंडल को हमेशा अपने साथ रखो—बाजार



जाते हुए, लोगों से बात करते हुए इस आभामंडल को याद रखो। और तुम एक उल्लास से भर जाओगे। तुम संसार में लगातार अपना एक निजि संसार लिए हुए चलोगे। इससे तुममें वर्तमान में जीने की क्षमता आ जाएगी।

व्यक्तिकि वास्तव में लगातार तुम पर हजारों-हजार चीजों को आक्रमण हो रहा है जो तुम्हारा ध्यान वर्तमान से खींच ले जाती हैं। यदि तुम्हारा अपना कोई सुरक्षा कवच न हो तो तुम बहुत कमज़ोर पड़ जाते हो। कोई कुत्ता भौंका और अचानक तुम्हारा मन उस दिशा में चला जाता है। भौंकने की आवाज से कुत्ता तुम्हारी स्मृति को छूता है। और तुम्हारी स्मृति में अतीत के बहुत से कुत्ते हैं। तुम्हारे मित्र के पास एक कुत्ता है...अब तुम्हारा मन कुत्ते से उस मित्र की ओर चला गया। और फिर उस मित्र की बहन की ओर जिसके प्रेम में तुम पड़ गए थे। अब सारी मूढ़ता शुरू हो जाती है। कुत्ते का भौंकना तो वर्तमान में था, लेकिन वह तुम्हें कहीं और अतीत में ले गया। वह तुम्हें भविष्य में भी ले जा सकता है—कुछ कहा नहीं जा सकता। कोई भी बात तुम्हें कहीं भी ले जा सकती है। मन के खेल बहुत जटिल हैं।

तो, व्यक्ति को एक सुरक्षा कवच चाहिए। कुत्ता भौंकता चला जाए पर तुम अपने में बने रहो—शांत, मौन, केंद्रित। कुछ दिनों या कुछ महीनों तक इस आभामंडल को लेकर चलो। जब तुम्हें लगे कि अब इसकी कोई जरूरत न रही तो उसे जाने दो। एक बार तुम्हें पता चल जाए कि कैसे वर्तमान क्षण में बने रहना है, तुम्हें उसके सौंदर्य और आनंद का अनुभव हो जाए तो तुम आभामंडल को छोड़ सकते हो।

बी रिअलिस्टिक : प्लान फॉर ए मिरेकल

और कुछ गंभीर...

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी। जब उसे लेकर उत्तर रहे थे ऊपर की मंजिल से, जीना छोटा, संकरा, नीचे के दरवाजे पर आकर अरथी को धक्का लग गया दरवाजे का और पत्नी उठ बैठी। मुल्ला की तो श्वास जैसे रुक गई। एक क्षण तो सकते में आ गया। फिर वह तीन साल जिदा रही। फिर मरी। फिर वही जीना। फिर अरथी उत्तरने लगी। जैसे ही नीचे दरवाजे के करीब आने लगी अरथी, मुल्ला चिल्लाया: भाईयो, जरा सम्हाल कर! यह वही दरवाजा है। पिछली बार ठोकर मार कर तुम तो घर चले गए, फिर तीन साल जो मुझ पर गुजरी वह मैं ही जानता हूँ।

मुल्ला नसरुद्दीन बैठा कुरान पढ़ रहा था। सुबह, सर्दी की सुबह। अभी कुछ ही दिन पहले की बात है। लेकिन कुरान कौन पढ़ता है! वह तो बूढ़े ऐसा खब लेते हैं कुरान को सामने... मगर देख रहा था सड़क पर। एक सुंदर स्त्री निकली, एकदम आवाज दी: फजलू, फजलू! दांत ला। फजलू ने कहा कि कुरान पढ़ने में दांत की क्या जस्तर है? अरे—उसने कहा—दांत ला पहले, एक जवान स्त्री जा रही है। सीटी बजाने का मन हो रहा है।

एक धर्मगुरु अपना व्याख्यान दे रहे थे। मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी गुलजान सामने वाली पंक्ति में ही बैठे हुए थे। तभी धर्मगुरु ने देखा कि मुल्ला की पत्नी तो वहीं बैठे-बैठे ही आंख बंद करके धुर्टि लेने लगी है। धर्मगुरु ने थोड़ी तो बेचैनी प्रकट की, कसमसाया, फिर भी शांत रहा। पर थोड़ी देर बाद मुल्ला ने अपनी छड़ी उठाई, अपनी टोपी सीधी की और उठ कर चलता बना। धर्मगुरु को यह तो बहुत बुरा लगा कि कोई उठ कर चला जाए। वह तो खैर ठीक कि कोई सो जाए, मगर उठ कर चला जाना किसी का, धर्मगुरु को बहुत अखरा। धर्म-सभा के अंत में उन्होंने मुल्ला की पत्नी से कहा कि देख, तू व्याख्यान के बीच सो गई सो ठीक, मगर तेरे पति को क्या हुआ? मैंने ऐसा क्या कहा कि वह उठ कर ही चला गया?

गुलजान बोली: महोदय, आप चिंता न करें। दरअसल उन्हें नींद में चलने की आदत है।

एक स्त्री के पति को लाटरी मिल गई। वह बहुत घबड़ाई। पति तो दफ्तर में थे, घर खबर आई कि लाटरी मिल गई है—दस लाख रुपया। वह इतनी घबड़ा गई... ईसाई स्त्री, पास के पड़ोस के पादरी के पास भागी गई और पादरी से कहा कि अब आप ही सम्झालो। मैं डरती हूँ क्योंकि मुझे मालूम है, उन्हें दस रुपये का नोट भी पड़ा मिल जाए तो रात भर नहीं सो सकते। उनकी एकदम हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, खून की चाल बढ़ जाती है। दस लाख रुपये! बरदाश्त न कर सकेंगे। वे मर ही जाएंगे। नहीं तो पागल हो जाना तो निश्चित ही है। अब आप बचाओ। आप ही बचा सकते हो, और कोई नहीं बचा सकता।

पादरी ने कहा: बिलकुल फिकर मत कर। यही हमारा काम है। मैं आता हूँ। पति के आने के पहले मैं आ जाता हूँ। पादरी आकर जम कर बैठ गया। पति दफ्तर से आए। पादरी ने पूरी की पूरी व्यवस्था बना ली थी कि धीरे-धीरे बताना है। एकदम से दस लाख रुपया ज्यादा हो सकता है। सिर की नसें फट जाएं, कुछ भी हो जाए।

तो पादरी ने कहा: सुनते हो, पचास हजार रुपये मिले हैं लाटरी में। फिर देखा उसने कि क्या असर पड़ता है। अगर पचास हजार पचा जाए तो फिर पचास हजार और बताएंगे। वे भी पचा जाए तो फिर और, फिर और, ऐसे धीरे-धीरे बता कर दस लाख बता देंगे।

पति ने कहा: पचास हजार! अगर पचास हजार मुझे मिले हैं तो पच्चीस हजार आपके चर्चे के लिए दान। पादरी वहीं गिरा, उसका हार्ट फेल हो गया।

मैट्रनिटी हास्पिटल के जनरल वार्ड से नर्स गोद में एक काला-कलूटा, अधमरा सा बच्चा लिए बाहर निकली। बाहर खड़े अनेक व्यक्तियों के बीच से नसरुद्दीन जोर से बोला: सिस्टर, यह बच्चा मेरा है! नर्स को तो बहुत आश्चर्य हुआ। वह बोली: मगर नसरुद्दीन, तुमने पहचाना कैसे कि यह तुम्हारा ही बच्चा है?

नसरुद्दीन बोला: अजी, मैं अपनी बीबी को अच्छी तरह जानता हूँ, जो भी चीज बनाती है ऐसा ही जला-भुना देती है।

प्रतिदिन मात्र दस मिनट के लिए लेटें और तनावों को कहें बाय-बाय

क्या आप जानते हैं कि हमारे शारीर का एक नैसर्गिक आकार है? क्या आपने अपने जीवन काल में इस आकार को महसूस किया है? पूरे दिन हम शारीर को अपने हिसाब से तोड़ते-मोड़ते रहते हैं। हम शायद अपने शारीर के इस तुड़-मुड़ आकार के प्रति भी जागरूक नहीं हैं। हम शारीर के प्रति तब जागते हैं जब उसे कोई तकलीफ, दर्द या असुविधा हो। अगर हम एक दिन में मात्र दस मिनट के लिए सजग होकर लेट जाएं तो अपने शारीर के नैसर्गिक आकार को आसानी से पा सकते हैं। यह स्थिति शारीर के लिए अत्यंत लाभकारी है। इस स्थिति में हम अपने शारीर को गुरुत्वाकर्षण के हवाले कर देते हैं। गुरुत्वाकर्षण हमारे शारीर में लगी गठानों को खोल देता है और शारीर के सभी छोटे-बड़े पुर्जों को अपनी ओर खींच कर शिथिल कर देता है। देखने में यह विधि बहुत साधारण सी प्रतीत होती है पर बहुत कारगर है। इसे नियमित रूप से करने पर आप एक सप्ताह में पाएंगे कि आपको थकान कम होती है और सभी कार्यों में आपकी एकाग्रता बढ़ गई है।

लाभ

1. रीढ़ को अनावश्यक दबावों से मुक्त करता है।
2. जोड़ों और मांसपेशियों को शिथिल करता है।
3. यह श्वसन के लिए जिम्मेदार मांसपेशी डायफ्राम को विश्रांत करता है जिससे श्वास प्रक्रिया खुलने लगती है।
4. गर्दन की मांसपेशियों को ढीला करता है।
5. आंखों के तनावों को मुक्ति।
6. पाचन तंत्र को विश्रांत करता है।
7. रोजमर्रा के तनाव हम जबड़ों और चेहरे की मांसपेशियों में संग्रहित कर लेते हैं। गुरुत्वाकर्षण इस क्षेत्र को शिथिल कर देता है।

पहला चरण

सिरहाने के लिए दो इंच या पांच सेंटीमीटर ऊँची एक चौड़ी किताब ले लेवें। किताब सख्त होती है जिससे रीढ़ को सीधा रखने में मदद मिलती है।

दूसरा चरण

हाथों का सहारा लेते हुए रीढ़ को धीरे-धीरे जमीन से छूते हुए सिर के पिछले हिस्से को किताब पर रख दें। सिरहाना दो इंच से कम या ज्यादा है तो गर्दन में तनाव का कारण बन सकता है या श्वास प्रक्रिया में कठिनाई उत्पन्न कर सकता है।

तीसरा चरण

क्या आपको पता है कि हमारे पेट की चमड़ी के नीचे दो परतें हैं जो जांघ की परतों से जुड़ी हुई हैं। इसलिए जब हम पैरों को मोड़ते हैं तब पेट की यह पर्तें शिथिल हो जाती हैं। घुटने बिना तनाव के मोड़ लें, यह आपको कमर के निचले हिस्से को जमीन से सटाने में भी मदद करता है। अपने हाथों को पसलियों के अंतिम हिस्सों पर रखें। जब हम इस स्थिति में लेटते हैं तो शरीर में बाहर ऐसे बिंदुओं का निर्माण होता है जो शरीर के वजन को ढोते हैं। अपना ध्यान इन बिंदुओं पर ले जाएं—सिर, कंधे, कमर, कोहनी, कूल्हे एवं पैर। अंततः अपने आपको पूरी तरह गुरुत्वाकर्षण के हवाले कर दें।

चौथा चरण

दस मिनट बाद आप पाएंगे कि आपकी श्वास में बदलाव आ चुका है। आपकी रीढ़ अब ज्यादा संतुलित और सीधी प्रतीत हो रही है। सीधे हाथ की तरफ करवट लें।

पांचवा चरण

उठने में बिलकुल जल्दी न करें, हाथों से सहारा लेकर उठें, झटके से न उठे। थोड़ी देर बैठ जाएं फिर शरीर से ही पूछें कि वह कैसे खड़े होना चाहता है।



योग, औषधि और ध्यान

आजकल शरीर को स्वस्थ बनाये रखने या रोगों से मुक्ति के उपाय के रूप में योग की पहचान बन चकी है। करें योग रहें निरोग, योग भगाए रोग—ये दो वाक्य इतनी बार दोहराए गए हैं कि योग का नाम सुनते ही अनेक प्रकार के योगासनों और विभिन्न प्राणायामों की याद आने लगती है। महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंग बताये हैं: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन में से प्रथम पांच को बहिरंग और अंतिम तीन को अंतरंग योग कहा जाता है। योगाभ्यास से शरीर लोचपूर्ण होने लगता है। शरीर के भीतर बहने वाली जीवन ऊर्जा की धाराओं के अवरोध पिघलने लगते हैं। आसन और प्राणायाम के अभ्यास करने से शांति और ऊर्जा मिलती है। लेकिन अधिकांश मामलों में योग का विद्यार्थी आरम्भिक चार अंगों में ही उलझकर रह जाता है।

योग जीवन रूपांतरण का विज्ञान है। विज्ञान इसलिए कि यह प्रयोग के माध्यम से परिणाम पर पहुंचता है। ओशो कहते हैं, ‘योग चिकित्सा विज्ञान नहीं है। योग अनुशासन है, साधना है। अंतर क्या है? अंतर यही है कि चिकित्सा की आवश्यकता तब होती है जब तुम बीमार होते हो। योग स्वास्थ्य की एक अलग और श्रेष्ठ दशा के लिए है, एक भिन्न प्रकार की समग्रता और अस्तित्व के लिए है।’

योगासन और प्राणायाम हमारे शरीर को स्वस्थ बनाये रखते हैं। योग के पहले पांच अंगों का पालन करना हमें इस योग्य बना देता है हम धारणा करके, ध्यान करते हुए समाधि तक पहुंच सकें। योग में आसन और प्राणायाम की ऐसी प्रक्रियाएं बताई गयी हैं जिनके द्वारा विचारों को नियंत्रित और शांत किया जा सकता है।

आसन और प्राणायाम हमें विचारों के कम होने या कुछ पल के लिए ठहर जाने की अनुभूति तो करवा सकते हैं, लेकिन यह अनुभूतियां ध्यान नहीं हैं। इसके बाद भी चार अंग: प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि शेष रह जाते हैं। प्रत्याहार है चेतना का अपनी ओर वापस लौटना, धारणा है बाहर के किसी विषय पर अवधान केंद्रित करना, उसे देखना: जैसी श्वास का आवागमन या शरीर की गतियां। देखने की इस प्रक्रिया का साक्षी हो जाना ध्यान है। ध्यान विधि है, समाधि उपलब्धि। लेकिन ध्यान को शब्दों से नहीं समझाया जा सकता है। इसे करके ही जाना जा सकता है।

योग के दो रूप बहुत प्रचलित हैं: हठयोग और राजयोग। हठयोग में ध्यान की दशा को उपलब्ध करने के लिए शरीर की गतियों और मुद्राओं का उपयोग किया जाता है और राजयोग में मन को खाली किया जाता है।

ओशो ने कई वर्षों तक हजारों साधकों को ध्यान में ले जाने के व्यावहारिक अनुभव के बाद अनेक ऐसी ध्यान विधियों का अविष्कार किया है जिनमें हठयोग और राजयोग दोनों समाहित हैं।

आरम्भ के वर्षों में उन्होंने राजयोग ही सिखाया था लेकिन इससे बहुत कम साधक ध्यान में जा पाए। फिर उन्होंने आधुनिक मनुष्य को ध्यान का स्वाद देने के लिए डाइनामिक मेडिटेशन का प्रयोग करवाया जिसमें हठयोग और राजयोग दोनों निहित हैं। यह प्रयोग ध्यान के अनुभव के लिये एक त्वरित विधि सिद्ध हुआ। बाद में इसी आधार पर ओशो ने नटराज, कुंडलिनी, मंडल और नादब्रह्म जैसे अनेक सक्रिय ध्यान प्रयोग निर्मित किये। इन सक्रिय विधियों में, विशेषकर डाइनामिक मेडिटेशन में, योग के आठों अंग समाहित हैं—सो, ये समग्र स्वास्थ्य का द्वारा खोलती हैं।

ओशो ध्यान को समग्र स्वास्थ्य की कुंजी कहते हैं। वे कहते हैं, ‘स्वास्थ्य का अर्थ है: जो स्वयं में स्थित हो जाये; जो अपने घर आ जाये, जो अपने केंद्र में रम जाये। स्वयं में रमन है स्वास्थ्य। स्व में ठहर जाना है स्वास्थ्य। निर्विचार चित्त में ही कोई स्वस्थ होता है।’

लेकिन इसका अर्थ यह जरा भी नहीं है ध्यान करने वालों के शरीर में कोई रोग नहीं हो सकता है। शरीर में होने वाली विभिन्न बीमारियों और संक्रमणों से मुक्ति के लिए हमें औषधि का उपयोग करना ही पड़ता है। न तो किसी रासायनिक पदार्थ का उपयोग करके ध्यान घिट नहीं हो सकता है और न ही ध्यान चिकित्सा का विकल्प बन सकता है। दोनों के आयाम अलग हैं।

ओशो कहते हैं, ‘औषधिशास्त्र, मेडिसिन आदमी के ऊपर की बीमारियों को पकड़ता है। मेडिटेशन ध्यान का शास्त्र आदमी को गहराई से पकड़ता है। इसे ऐसा कह सकते हैं कि औषधि मनुष्य को ऊपर से स्वस्थ करने की चेष्टा करती है। ध्यान मनुष्य को भीतर से स्वस्थ करने की चेष्टा करता है। न तो ध्यान पूर्ण हो सकता है औषधि शास्त्र के बिना और न औषधिशास्त्र पूर्ण हो सकता है ध्यान के बिना। भीतर ध्यान, बाहर चिकित्सा; तो चिकित्साशास्त्र को परिपूर्ण शास्त्र बना सकते हैं। मेडिसिन और मेडिटेशन को मैं एक ही शास्त्र के दो छोर मानता हूँ। अभी कड़ियां नहीं जुड़ पाई। शरीर की चिकित्सक फिक्र कर ले। चित्त की साईकोलोजिस्ट फिक्र कर ले। उसकी आत्मा की फिक्र योग कर ले। जिस दिन अस्पताल इस तरह पूरे मनुष्य के व्यक्तित्व को एज ए होल, एज ए टोटेलिटी, स्वीकार कर के चिकित्सा करेगा, मैं मानता हूँ जीवन में बड़े मंगल का क्षण होगा।’

OSHO.com

जीवन के किसी भी मोड़,
किसी भी मुकाम पर -
समयातीत ओशो-समाधान

कहीं भी, कभी भी



3000 से अधिक ओशो प्रवचन जिन्हें आप आसानी से डाउनलोड करें और
सुनें घर या दफ्तर में कहीं भी
www.osho.com/audiotalks

ओशो की किसी भी पुस्तक को डाउनलोड करें और कहीं भी पढ़ें
www.osho.com/ebooks

ओशो के संपूर्ण साहित्य में से किसी भी विषय पर सर्च (खोज) की सुविधा
www.osho.com/library

ओशो इंटरनेशनल मेडिटेशन रिजॉर्ट, पुणे की समस्त जानकारी
www.osho.com/resort

ओशो मल्टीवर्सिटी द्वारा आयोजित थेरेपी व ध्यान समूहों संबंधी जानकारी
www.osho.com/multiversity

ओशो ध्यान विधियों की जानकारी, वीडियो व संगीत
www.osho.com/meditation

मई 2020

मेष (मार्च 21-अप्रैल 20)

मूल बात यह जरा भी नहीं है कि बाह्य-तल पर क्या घट रहा है—अच्छा-बुरा, सफलता-असफलता, हानि-लाभ, सुख-दुख, स्वास्थ्य-महामारी। लाख टके की बात तो यह है कि बाह्य-तल पर घट रही घटनाओं से भीतर क्या बदलाव आ रहे हैं। यदि बाह्य-तल पर घटी घटनाएं भीतर के तल पर बेहोशी ले आती हैं, जड़ता ले आती हैं, अहंकार ले आती है तो कथित सफलता भी अंततः दुखद है। लेकिन यदि बाहर का दुख, पीड़ा, वेदना, मृत्यु का अहसास जगा देता है, होश से भर देता है, अधिक दयालु व विनम्र बना देता है तो चाहे इसे कोरोना नामक महामारी ही क्यों न कह दें—मनुष्य को अधिक मनुष्य बना देती है, तो इसे अस्तित्व के आशीर्वाद की तरह ही देखना होगा। दुनिया में हो रहे इस बदलाव के समय आप भी बदल रहे हैं इससे अधिक शुभ और क्या हो सकता है।

वृषभ (अप्रैल 21-मई 21)

एक नजरिया तो यह होता है कि हर छोटी-बड़ी बात की हाय-तौबा मचा कर जीवन के अवसर को खो दें और एक नजरिया यह होता है कि बड़े से बड़े अवसर का फायदा ले लिया जाये। और वह असवर चाहे कितना ही चिंतित कर देने वाला हो। कोरोना के रूप में एक अवसर आया है। अब यह आपकी समझ और प्रतिभा पर निर्भर करता है कि इस अवसर का सदुपयोग आप पृथ्वी को और अधिक सुंदर, सौहार्दपूर्ण, सह-अस्तित्व वाली बना देते हैं या महामृत्यु में। शुरुआत आपसे होती है—इस समय यदि आप ध्यानपूर्ण होते हैं, प्रेमपूर्ण होते हैं, विनम्र होते हैं तो यह सारी मनुष्यता एक उच्चतर स्तर पर जा सकती है। यदि ऐसा नहीं होता है तो महामारी कितना हानि कर सकती है यह किसीसे छिपा नहीं है।

मिथुन (मई 22-जून 21)

एक अच्छी बात बोली जाती है—चुनावरहित सजगता। जब तक चुनाव है—अच्छा-बुरा है, गलत-सही है और तदनुसार मन को अच्छा या बुरा लगता है तब तक मन में तनाव बना ही रहता है। सुख जैसी कोई अनुभूति नहीं होती है, बस दुख से थककर कुछ देर राहत लेते हैं, उसे सुख मान लेते हैं। जीवन जन्म से लेकर अंतिम पल तक दुख का एक फैलाव ही कहा जाये तो सच होगा। ऐसा बहुत कम होता है जब पूरी पृथ्वी एक साथ किसी एक ही अनुभव से गुजरे, एक ही भय से गुजरे। जब दुख इतना उभर कर आये तब उसके प्रति सजग होना अधिक आसान हो जाता है। कोरोना के भय ने इस मानव जाति को बहुत बड़ा अवसर दिया है—समय है होश का, सजगता का, ध्यान का, चुनाव-रहित स्वीकार भाव का। जो है सो है। हर पल का उत्सव मनाया जाये, पता नहीं अगले पल क्या होने वाला है। ऐसी भावदशा में जीने वाले व्यक्ति के लिए मृत्यु होती ही नहीं है, न आज, न सालों बाद।

कर्क (जून 22-जुलाई 22)

यदि आप यहीं सोचते रहे कि वर्तमान में चल रहे हालात धीरे-धीरे ठीक हो जायेंगे और फिर जीवन वैसा ही हो जायेगा जहाँ छोड़ा था तो आप गलत सोच रहे हैं। चीजें अब इतने बड़े पैमाने पर बदल चुकी हैं और बदल रही हैं और बदलने वाली हैं कि मन को पूरी तरह से एकदम नये के प्रति राजी होना ही होगा। औशो जब याद दिलाते हैं कि हर जाते पल के प्रति मर जायें और आने वाले पल के प्रति जाग जायें तो यह अवसर आ गया है। जो गया वह गया, अब नया अवसर, नया जीवन, नया सब कुछ। नये का स्वागत करें, नये के प्रति राजी हो जायें। तब न तो वह बात दुख देगी जो चली गई, न वह बात जो आज हो रही, न ही वह जो आने वाले दिनों में होने वाली है।

सिंह (जुलाई 23-अगस्त 23)

जब तक कि सर्व के सामने अंश समर्पित नहीं होता, दुख तो जीवन का अनिवार्य हिस्सा रहता ही है। सर्व अंश के मुताबिक नहीं चलता है अंश को ही सर्व के मुताबिक चलना होता है। कोरोना वायरस ने इस पूरी मानवता को यह मूल पाठ सिखाया है कि अंश यदि सर्व पर हावी होने का प्रयास करेगा, जीतने का प्रयास करेगा तो उसके परिणाम कभी भी अच्छे नहीं आ सकते। अंश सर्व से जीत भी कैसे सकता है? यह प्रयास ही गलत है। इसी बात को हर व्यक्ति अपने निजी जीवन में भी इसी तरह से ले सकता है। अहं को त्यागकर सर्व के साथ राजी हो जाना। इस माह आपको यह पाठ अच्छे-से सीखने को मिल रहा है। खुश होइये।

कन्या (अगस्त 24-सितंबर 23)

जितना सघन स्वीकारभाव होता है उतना ही जीवन सुखद व आनंददायी हो जाता है। फिर बाहरी या भीतरी कोई भी बदलाव हो, कितना भी बदलाव हो, जीवन के मूल पर फर्क नहीं आता। जितना मन चालाकियां करता है और हर बात पर मूल्यांकन करता है उतना ही जीवन जटिल से जटिल हो जाता है। किसी भी तल पर छोटा-सा बदलाव और मन नक्ब बना लेता है। कोरोना तो बड़ा अवसर लेकर आया है। यदि मन की चालाकियों में उलझ गये तो नाहक ही दुख भी होगा और मानसिक परेशानी भी। याद रखिये कि कुछ समय पहले तक यह वायरस नहीं था और कुछ समय बाद फिर से चला जायेगा। इस बीच सीखने का बहुत बड़ा अवसर है कि जो है उसे स्वीकारा जाये। यह सीख लिया तो जीवन पूरी तरह से बदल जायेगा। तब कोरोना का आना भी वरदान साबित हो जायेगा।

तुला (सितंबर 24-अक्टूबर 23)

मन का तालमेल पुराने से बैठता है, मृत से, घिसी-पीटी बातों से, जिन राहों पर सालों से चलते रहे, बस उन्हीं पर चलते रहे तो मन को बहुत राहत मिलती है। लेकिन जैसे ही कुछ नया आया, कुछ नया घटा,

कुछ नया हुआ, मन बेचैन हो जाता है, व्याथित हो जाता है। और जीवन हर पल नया लेकर आ रहा है, हर सुबह नई किरणें आ रही हैं, नई हवाएं बह रही हैं, नये हालात बन रहे हैं। इसी पुराने व नये के बीच जीवन दुखमय हो जाता है। इस बार तो पूरी मानव जाति के लिए ही एकदम नई घटना घट गई। पूरा संसार घरों में कैद हो जायेगा—ऐसा तो पहली बार हो रहा है। निश्चित ही मन विचलित होगा, लेकिन स्वीकारभाव ऐसी जादू

जीवन को विचलित होने ही नहीं देती। अब जब कि कुछ भी मन के हाथ में नहीं, स्वीकारभाव का परम आनंद क्यों न लिया जाये?

वृश्चिक (अक्टूबर 24-नवंबर 22)

सोचना-समझना अपनी जगह व हकीकत का जीवन अपनी जगह। सोच-विचार का तालमेल यदि हकीकत से बैठता चला जाये तो जीवन सहज, सरल व सुख से भरा हो सकता है। आपके साथ यही सुयोग खूब घट रहा है इसी कारण जीवन सुखमय है, आनंदित है, विश्रांत है। यही समय है जब इस बात को अच्छी तरह से गहरे में उतार लें कि जीवन में चाहे जो कुछ होता चला जाये, संतुलन बना रहे, भीतर केंद्रस्थ रहा जाये। और ऐसा होता है तो सच मानकर चलिये कि जीवन हमेशा ही सुखमय बना रहेगा चाहे स्थितियां-परिस्थितियां कितनी ही विपरीत हो जायें, बदल जायें। और इस समय तो यह सीख और भी काम की है क्योंकि पूरा संसार ही बहुत बड़ी उथल-पुथल से गुजर रहा है। इतनी विशाल उथल-पुथल में भी यदि आप केंद्रस्थ रह पाते हैं तो निश्चित ही यह गहन आनंद की बात है।

धनु (नवंबर 23-दिसंबर 23)

शब्दों से पेट भरता होता तो नाहक श्रम की जरूरत ही क्या पड़ती? बस रोटी शब्द कहते और अगला चरण तृप्ति का हो जाता। लेकिन ऐसा है नहीं। शब्द की अपनी अहमियत है तो यथार्थ की अपनी। पेट तो तब ही भरता है जब रूखी-सूखी ही सही लेकिन रोटी गले के नीचे उतरे। शब्द चाहे कितने ही सुस्वादु पकवानों से तर-बतर हों, शब्द अंततः शब्द है। समय है जब जीवन के यथार्थ व शब्दों के मायाजाल को ठीक से समझा जाये ताकि जहां शब्द की जरूरत हो वहां शब्द का उपयोग किया जाये और जहां यथार्थ की जरूरत हो उसे वैसा ही लिया जाये और तदनुसार जतन किया जाये। यदि ऐसा होता है तो कोरोना के भयावह तूफान में भी मन विश्रांत रहेगा, आनंदित रहेगा। समय इस प्रयोग को गहरे से जी लेने का है।

मकर (दिसंबर 24-जनवरी 20)

जब तक कि पढ़ी-सुनी बातें जीवन में अनुभव बनकर उतरती नहीं हैं तब तक बातें सिर्फ बातें बनकर रह जाती हैं और जीवन के यथार्थ अनुभव में बातों से जरा भी काम नहीं चलता है। और जब कोई अनुभव इतना विराट

या व्यापक हो जाता है कि किसी का मन उसे समझने में असफल रह जाता है तब बातें कितनी अर्थहीन हो जाती हैं यह बात आपको इन दिनों पता चल रही है जब मानवता कोरोना के भयावह अनुभव से गुजर रही है। लेकिन गहराई से समझा जाये तो बातें ही अंततः अनुभव भी बन सकती हैं। अब समय है जब हर बात को अनुभव में उतारा जाये और यह इस बड़ी में संभव है। और यदि ऐसा हो जाता है तो जो समय मानवता पर भय का समय बनकर आया है वही समय आपके लिए वरदान बन जायेगा। वरदान बना लेने की क्षमता का सुधुपयोग करने का उचित समय आ चुका।

कुंभ (जनवरी 21-फरवरी 19)

ध्यान की याद ओशो पूरा जीवन सतत कराते रहे। जब तक कि स्वयं का मौन और शांति अपने जीवन की हकीकत न बन जाये तब तक ओशो का कराया स्मरण भी अधिक काम नहीं आता है। समय है जब आप पूरे मन से, पूरी ऊर्जा से, पूरी त्वरा से ध्यान में उतरें। कम से कम एक घंटा ओशो द्वारा बताया कोई एक सक्रिय ध्यान परे श्रम से करें। यह एक घंटा आपको इतना कुछ दे जायेगा कि 23 घंटे में जो कुछ इन दिनों देखने-सुनने में आ रहा है वह आपको रंच मात्र भी विचलित नहीं कर पायेगा। जितनी अधिक शांति होगी, मौन होगा उतना ही आप प्रसन्न होंगे और आपकी प्रसन्नता व शांति की इस समय मानवता को जितनी जरूरत है वह शायद ही कभी रही होगी। अपनी, अपने स्नेहीजनों की व मानवता की आपके अपने मौन से सेवा करने का सुअवसर बार-बार नहीं आता है। इस अवसर को यूं ही न जाने दें।

मीन (फरवरी 20-मार्च 20)

अच्छे व्यक्ति की यह विशेषता होती है कि हर स्थिति-परिस्थिति में अपनी अच्छाई का पूरा-पूरा सुधुपयोग करता है। और यह सुधुपयोग शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तत्त्व पर स्वास्थ्य देता है। और स्वास्थ्य का महत्व तब अधिक पता चलता है जब हर कोई रुग्णता की बात कर रहा हो या हर तरफ से बीमारी की खबरें आ रही हों। और यही स्वास्थ्य जीवंत उदारहरण बन जाता है। समय है जब आप अपने स्वास्थ्य को अधिक से अधिक निखारें, अधिक से अधिक बल दें। आप संभवतया अंदाजा भी नहीं लगा सकते कि इस समय का यह अनुभव कितने न लोगों के लिए उपयोगी हो जायेगा, एक आशा की किरण बन जायेगा और उनके जीवन में भी नई बहार आ जायेगी। अपने ध्यान व उत्सव का अधिक से अधिक सघन अनुभव अपने सभी स्नेहीजनों के साथ करते रहें ताकि विपदा का यह समय भी मानवता के लिए शुभ बनकर गुजर जाये।

समय रुकता नहीं है...

न वसंत रुकता है, न पतझड़

ए.ए. प्राक्टर के एक गीत के भावों पर आधारित यह लेख ओशो ने 20 वर्ष की आयु में लिखा था जो कि 27 जून 1952 के ‘जयहिन्द’ में प्रकाशित हुआ। मौजूदा परिस्थिति में यह स्मरण रखने जैसा है।

वसंत अपने यौवन पर था। मैं खुशियों में मस्त था और मद के जाम मेरे हाथों में छलक रहे थे तब कहीं दूर से किसी की सख्ती और सर्द आवाज मेरे चारों तरफ गूंज उठी—

‘मूर्ख इंसान, यह मधु, ये जादू भरे गीत, यह मुस्कुराता यौवन, एक दिन यह कुछ भी न रहेगा, समय का चक्र रुकता नहीं...समय जोर से भाग रहा है, हर क्षण कुछ जाम टूटते हैं, और हर क्षण भागते जीवन पर मौत की काली रेखाएं अपने चिह्न छोड़ती हैं...चुबन...आलिंगन...दो क्षण...और फिर मौत सबको बराबर कर देगी...।

‘दरवाजे की तरफ देख, अंधेरा दस्तक दे रहा है, तुझे रात के सुनसान में उसांसे भरने को छोड़ तेरे भाग्य का सूरज अब विदा लेने को है...’

मेरे हाथ कांपने लगे और नुपुर की मदमाती ध्वनि के बीच उसकी सूखी आवाज रह-रह कर गूंजती रही...‘समय जोर से भाग रहा है...हाँ! समय जोर से भाग रहा है...!’

वसंत का यौवन अब नहीं था, खिज़ा जीत गई थी, मेरी आंखों में आंसू और सर्द रात मेरी आत्मा को घेरकर बैठी थी तब कहीं दूर से एक मीठी आवाज मेरे सूने मन में गूंज उठी—

‘मूर्ख इंसान, ये आंसू, यह मौत का सुनसान अंधेरा, ये गमगीन छायाएं, एक दिन यह कुछ भी न रहेगा, स्वप्न और दुखः सब समय की चक्की में पिस जाते हैं...समय रुकता नहीं है, हर क्षण कुछ उदास चेहरों पर मुस्कुराहट दौड़ती है, और हर क्षण किसी सूने दरख्त पर कोंपलें उमगती हैं, जिंदगी मौत के कण-कण पर प्यार और जीवन के महल बनाती है...उसका पथ अनंत और उसकी शक्ति अजेय...।’

‘उस तरफ देख, पूरब दिशा में थकी निशा सुनहरी ऊषा से विदा ले रही है, मुस्कुरा पगले! दुख की घड़ियां बीत गई हैं।’

मेरी निराश आत्मा के तार जीवन के प्रकाश में झनझना उठे और उसका अमर संदेश प्रकाश की ज्योति, ज्योति से प्रतिध्वनित हो गूंजता रहा—‘समय रुकता नहीं है!...हाँ! समय रुकता नहीं है...।’

अवसर तो दो, उसके बादल बरसने को आतुर हैं !

भर देते हो
बार-बार, प्रिया, करुणा की किरणों से
क्षुब्ध हृदय को पुलाकित कर देते हो।
भर देते हो!

मेरे अंतर में आते हो, देव, निरंतर,
कर जाते हो व्यथा-भार लघु
बार-बार कर-कंज बढ़ा कर;
भर देते हो!

अंधकार में मेरा चोदन
सिक धरा के अंचल को
करता है क्षण-क्षण-

कुसुम-कपोलों पर वे लोल शिशिर-कण
तुम किरणों से अशु पौछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो।
भर देते हो!

तुम जरा खिड़की तो खोलो,
झरोखा तो खोलो हृदय का—
और उसका सूरज सदा तुम तैयार पाओगे !
उसका सूरज क्या कभी झूबता है ? उसकी सुगंध सदा
तुम्हारे चारों तरफ डोल रही है। अवसर तो दो,
उसके बादल बरसने को आतुर हैं !
मगर तुमने अपने हृदय की पृथ्वी को छिपा रखा है।
व्यासे हो, पीड़ित हो।
मगर गलत दिशाओं में खोज रहे हो।
भिखमंगों से मांग रहे हो। और जो दे सकता है,
बिन मांगे दे सकता है, उसकी तरफ आंख नहीं उठाते !
झोली फैलाओ, मांगो मत !
होनी होय सो होय, प्रवचन 1

तैयारी करो—उड़ने की तैयारी करो। पंखों को झटको, धूल-धवांस झाड़ो।
कूड़ा-करकट इकट्ठा हो, अलग करो। व्यर्थ के बंधन, व्यर्थ के आग्रह, व्यर्थ के
पक्षपात, सिद्धांत, शास्त्र, सब गिरा दो।

सुबह करीब है। उड़ने की घड़ी आ गई। रात जो बना ली थीं बहुत सी आसक्तियां,
लगाव, अब उनसे पार उठना है। सूरज निकलेगा, आकाश में उसकी किरणों का जाल
फैलेगा। दूर तुम्हें पुकारेगा। भोर हो गई, अब उड़ना होगा।

अब अपने असली घर की तरफ जाने का क्षण करीब आ रहा है।
उसकी तैयारी में लगो।

यहां तो सिर्फ सुबह होने की खबर दी जा रही है। सुबह कैसे करीब आए,
उसका विज्ञान समझाया जा रहा है। और जब सुबह आ जाए तो तुम कैसे उड़ सको—तुम जो कि वर्षों से, जन्मों से नहीं उड़े हो, फिर कैसे अपने पंखों को उड़ा सको,
फिर कैसे पंखों को तौल सको आकाश में,
क्योंकि फिर लौटना नहीं है।

